द्रव्यसंग्रह
सरल जैन ग्रन्थ माला
जबलपुर

सरल जैन-ग्रन्थमाला, जबलपुर द्वारा प्रकाशित

द्रव्यसंग्रह पर लोकमत:—

न्यायाचार्य, तर्करत्न, न्यायदिवाकर सिद्धान्त-महोदधि, स्याद्वादवारिधि पं० माणिकचन्द्र जी कौन्देय प्रधानाध्यापक जम्बू-महाविद्यालय सहारनपुर—यह छात्रों के लिये अतीव उपयोगी है। मैं चाहता हूँ कि पाठशालाओं में यही द्रव्य-संग्रह अध्ययन अध्यापन कोटि में लाया जावे। जैन-सन्देश—पुस्तक को सरल बनाने का अच्छा प्रयास किया है। जैनमित्र-विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी है। इसे ही सब पाठशालाओं में चलाना चाहिये। जैन-बन्धु—प्रस्तुत पुस्तक उपलब्ध भाषाटीकाओं में विद्यार्थियों के लिये सबसे अच्छी है। जैनमहिलादर्श—अर्थसंग्रह, भेदसंग्रह, प्रश्नसंग्रह आदि विद्यार्थियों के काम की पंक्तियाँ हैं। दिगम्बरजैन—आज तक जितने विद्यार्थियोपयोगी द्रव्यसंग्रह आदि प्रगट हुये हैं, उनमें यह सर्वोपरि तैयार हुवा है। अब यही सब पाठशालाओं में चलाने योग्य तथा स्वाध्याय करने योग्य भी है। अर्जुन—अनुवाद सरल तथा उत्तम है। जैनधर्म के प्रेमियों के लिये पुस्तक काफी सुगम बना दी गई है। पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री सम्पादक जैनदर्शन व प्रधानाध्यापक स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस—आपका परिश्रम प्रशंसनीय है। पं० पन्नालाल—"वसंत" साहित्याचार्य, सागर—इस संस्करण से छात्रों का अधिक सुहित होगा। सिद्धान्त-रत्न पं० नन्हेलाल जी शास्त्री भूतपूर्व धर्माध्यापक गोपाल सिद्धान्त विद्यालय, मोरेना व प्रधानाध्यापक, जैन बाला-विश्राम आरा—पाठशालाओं में पढ़ने वाले छात्रों के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ सम्पादक 'वीर'—अनुवाद और सम्पादन सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर हुवा है। अब यह पुस्तक सभी वर्ग (संस्कृत-अंग्रेजी) दोनों छात्रों के लिये उपयोगी बन पाई है। प० कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य-भूतपूर्व धर्माध्यापक व सुपरि०, भा० दि० जैन महाविद्यालय, ब्यावर—मैं सत्रह वर्षों से छात्रों को पढाते हुये इस कमी का अनुभव कर रहा था कि ऐसा सुन्दर सरल संस्करण निकाला जावे। आपने मेरी मनोकामना पूरी कर दी। पं० किशोरीलाल शास्त्री स० सम्पादक "जैन गजट" व प्रधानाध्यापक वीर विद्यालय, पपौरा—ग्रन्थ आप की टीका से अति उत्तम बन गया है। यह प्रयास परमादरणीय है। पं० बालचन्द्र शास्त्री प्रधानाध्यापक ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, मथुरा—उपलब्ध भाषाटीकाओं में आपकी कृति निश्चय सर्वश्रेष्ठ है। पं० शालचन्द्र न्यायतीर्थ, भू० पू० प्रधानाध्यापक अभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला क्षेत्रपाल ललितपुर—सरलता पूर्वक अर्थबोध कराने में आपको सफलता मिली है। वाणीभूषण पं० तुलसीराम काव्यतीर्थ, प्रधानाध्यापक जैन हाईस्कूल बड़ौत—पाठशालाओं और स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये बडे काम की चीज़ हुई है। रामचन्द्र संघी एम ए. एल एल बी, विशारद भूतपूर्व प्रिन्सिपल हितकारिणी हाइस्कूल व सम्पादक शारदा पुस्तकमाला, जबलपुर—बालकों के लिये ऐसी सरल और हृदयग्राही टीका की बड़ी आवश्यकता थी। जैनेतर जिज्ञासुओं को जैनसिद्धान्त हस्तामलक कर दिया गया है। साहित्यरत्न बा. फूलचंद जी वकील बी ए. एल एल. बी इन्दौर-विद्यार्थियों के लिये उक्त ग्रन्थ बड़े ही काम का है। आधुनिक टीकाओं में सर्वश्रेष्ठ है। पं० मुन्नालाल काव्यतीर्थ, धर्माध्यापक त्रिलोकचंद जैन हाईस्कूल इन्दौर-पुस्तक परीक्षार्थियों के प्रयोजन को ठीक सिद्ध करती है। पं० दरबारीलाल कोठिया, प्राच्य वा जैनदर्शन-शास्त्री पपौरा—यह टीका छात्रों को ठोस ज्ञान एवं व्युत्पन्न कराने में अपूर्व ही है।

दो शब्द

मान्यवर !

यह ग्रन्थ आपकी सेवा में समालोचना के लिये भेजा है आशा है कि आप भी अपनी अनुमति प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे।

बहुत हर्ष का विषय है कि सरल-जैन-ग्रन्थमाला के प्रथम कुसुम "द्रव्यसंग्रह" को पत्रकारों, विद्वानों और सर्व-साधारण जनता ने इतना अधिक पसन्द किया है कि वे इसे बीसों वर्षों से पढ़ाये जाने वाले संस्करणों से भी अधिक उपयोगी समझते हैं। साथ ही आप महानुभावों का अधिक आग्रह है कि इसी प्रकार के संस्करण "छहढाला" आदि पुस्तकों के भी निकालूं, जिससे छात्रों का यथोचित लाभ हो। इसी कामना से नीचे लिखी पुस्तकों के संस्करण निकालने का पूर्ण निश्चय किया है।

आशा है कि आप इन्हें भी अवश्य अपनाने की कृपा करेंगे।

सरल जैनधर्म	प्रथम भाग	छहढाला मूल
,,	द्वितीय ,	तत्त्वार्थसूत्र ,,
,,	तृतीय ,,	निर्वाणकाण्ड ,,
,	चतुर्थ ,,	पंचमंगल ,,
छहढाला	(सटीक)	
रत्नकरण्ड श्रावकाचार	,	भक्तामर भाषा
देवशास्त्रगुरुपूजा	सार्थ	उपासनातत्त्व

इनके सिवाय अन्य बालोपयोगी पुस्तकें भी बहुत शीघ्र प्रकाशित की जावेंगी।

विनीत—

भुवनेन्द्र "विश्व"

प्रकाशक - सरल-जैन-ग्रन्थमाला, जबलपुर

कर्मवीर प्रेस, जबलपुर।

सरल-जैन-ग्रन्थमाला का प्रथम कुसुम ।

द्रव्य-संग्रह

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति विरचित

टीकाकार—

भुवनेन्द्र "विश्व"

बुढ़वार (ललितपुर) निवासी

प्रकाशक—

सरल-जैनग्रन्थमाला

जवाहरगंज, जबलपुर (सी पी)

श्रुत-पञ्चमी वीर स० २४६४	प्रथमावृत्ति सन १९३८	जिल्द वाली ।=) बिना जिल्द ।-)

मुद्रक—मन्नालाल [illegible] , विशारद,
[illegible] प्रिंटिंग वर्क्स [illegible]

समर्पण ।

सेवा में,

श्रीमान् पण्डित फूलचन्द्र जी शास्त्री,

अध्यापक, दिगम्बर जैन पाठशाला

मु० डेह, पो० नागौर (मारवाड)

आपकी असीम कृपा से आज इस माला का प्रथम कुसुम आप के चरण कमलों में सादर समर्पण करने में समर्थ हो सका हूं। आशा है कि आप इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करने की कृपा करेंगे।

भवदीय—

अनुज

भुवनेन्द्र "विश्व"

दो शब्द

आज कल आवश्यकता है कि जैन धर्म की पाठ्य पुस्तकें अधिक से अधिक सरल ढंग में प्रकाशित की जावें।

द्रव्यसंग्रह, जिसमें जैनधर्म का मर्म बहुत सरलता से सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने बहुत थोड़े शब्दों में भर दिया है, के अनेक विद्वानों द्वारा लिखाकर अनेक प्रकाशकों ने भिन्न २ संस्करण निकाले हैं। इतने पर भी इसको आधुनिक पद्धति में सरल एवं सुपाठ्य बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसमें कितनी सफलता मिली है, यह आप सहज ही समझ सकते हैं।

इसका संशोधन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान श्रीमान् पं० दयाचन्दजी न्यायतीर्थ, सिद्धान्तशास्त्री, प्रधानाध्यापक जैन विद्यालय, सागर और समयसार आदि अनेक ग्रन्थों के प्रख्यात टीकाकार तथा सम्पादक ब्र० शीतलप्रसादजी ने बहुत परिश्रम पूर्वक किया है। प्राकृतगाथाओं का संशोधन श्रीमान ए० एन. उपाध्ये, प्रोफेसर राजाराम कॉलेज, कोल्हापुर—(शाहापुरी) ने करने की कृपा की है तथा "अर्थसग्रह" में आये शब्दों की परिभाषायें, श्रीमान् पं० माणिकचंद्रजी न्यायतीर्थ, धर्म्माध्यापक जैन विद्यालय, सागर ने की है।

आचार्य का जीवनचरित्र, "मा० ग्रन्थमाला" के मंत्री विद्वद्वर पं० नाथूरामजी "प्रेमी" के संकेतानुसार लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त पुस्तक को आधुनिक पद्धति से तैयार करने के लिये बा० उग्रसेनजी सेक्रेटरी अ० भा० दि जैन

परिषद् परीक्षा बोर्ड, बड़ौत (मेरठ) ने अनेक पत्रों द्वारा अनेक सम्मतियाँ प्रदान की है।

उपर्युक्त श्रीमानों के सहयोग के बिना इस पुस्तक का इतना अच्छा संस्करण निकलना कठिन था। इसलिये उक्त सज्जनों का आभार स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता। इतने पर भी जो त्रुटियाँ रह गई है, वे मेरी ही है।

उसके लिये आप से क्षमा चाहता हुवा आशा करता हूँ कि मुझे त्रुटियाँ सुझाने की कृपा कीजिये ताकि अग्रिम संस्करण अधिक उपयोगी बन सके।

अक्षयतृतीया वीर सं० २४६४	विनीत— भुवनेन्द्र "विश्व" जबलपुर।

विषय सूची ।

चार्ट व विवरण ।

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
३. त्रिकाले	त्रिकाले	३	८
मन.पर्य्यय	मन पर्य्यय	७	चार्ट
असंख्यदेश.	असंख्यदेश वा	११	१३
आकाश अवकाश	आकाश अवकाश	२३	२३
अत्थिकायादु	अत्थिकाया दु	२७	३
सव्वगहु	सव्वगहू	३०	१८
समास	समास	३१	२५
भणियजं	भणिय ज	६	१८
समुद्दात	समुद्घात	८०	३
वेद्क	वेदना	८०	४
द्वितीय से	द्वीन्द्रिय से	१५	३
काय से कर्म	काय से कर्म और नोकर्म	३६	१७
का जंपह	मा जपह	६०	७
व्यवहारनय	निश्चयनय	६४	५
निश्चयनय	व्यवहारनय	६४	८

सासादन = सम्यक्त्व छोड़कर मिथ्यात्व की तरफ जाना		१८	६

॥ श्री ॥

सिद्धान्त-चक्रवर्ति नेमिचन्द्र आचार्य का

संक्षिप्त जीवनचरित्र।

हमारे चरित्र नायक दिगम्बर सम्प्रदाय के नन्दिसंघ के देशीयगण में हुये हैं। यह गण कर्नाटक में प्रसिद्ध हुवा है और इसमें बड़े २ विद्वान् हो चुके हैं। इस गण के अनेक विद्वान् "सिद्धान्त-चक्रवर्ती" के पद से सुशोभित हुये तथा नेमिचन्द्र को भी यह महान् पद प्राप्त हुवा।

गुणनन्दि के शिष्य विबुधगुणनन्दि, विबुधगुणनन्दि के अभयनन्दि और उनके वीरनन्दि। अभयनन्दि के शिष्य वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि थे। आचार्य, वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि को भी गुरु समान मानते थे। नेमिचंद्र, अभयनन्दि के शिष्य थे। अभयनन्दि, इन्द्रनन्दि, वीरनन्दि, कनकनन्दि और नेमिचन्द्र ये सब प्राय. एकही समय में हुये हैं।

इनका समय शक सवत् की दसवीं शताब्दि का प्रारम्भ सिद्ध होता है। नेमिचन्द्र और चामुण्डराय भी समकालीन थे।

'चामुण्डराय' गंगवंशीय राजा राचमल्ल के प्रधान मन्त्री और सेनापति थे।

श्रवणबेलगोल की संसारप्रसिद्ध बाहुबलि या गोम्मट-स्वामी की प्रतिमा इन्होंने ही प्रतिष्ठित कराई थी और इसी उदारता और धर्म्मानुराग से प्रसन्न होकर राजा 'राचमल्ल' ने इन्हें 'राय'' का पद प्रदान किया था। इनका दूसरा नाम "अण्ण" भी था। ये बड़े शूरवीर और पराक्रमी थे। इन्होंने गोविन्दराज आदि अनेक राजाओं को परास्त किया था इस लिये इन्हें समरधुरन्धर, वीरमार्तण्ड, रणरंगसिंह, प्रतिपक्षराक्ष आदि अनेक उपनाम प्राप्त थे। ये जैनधर्म के बड़े श्रद्धालु और विद्वान् थे। इसी कारण आप सम्यक्त्वरत्नाकर और गुणरत्न-

भूषण आदि पदों से विभूषित हुये। चामुण्डराय को आचार्य नेमिचन्द्र से बहुत धार्मिक ज्ञान का लाभ हुवा है। चामुण्डराय के बनाये हुये, चामुण्डराय पुराण, गोम्मटसार की कर्नाटकवृत्ति और चारित्रसार प्रसिद्ध है।

आचार्य नेमिचन्द्र के बनाये हुये गोम्मटसार, लब्धिसार और त्रिलोकसार ये तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

त्रिलोकसार आदि के ग्रन्थकर्त्ता नेमिचन्द्र ही इस "द्रव्यसंग्रह" के कर्त्ता मालूम होते है। क्योंकि त्रिलोकसार के अन्त में—

[illegible] मिचंदमुणिणा। [illegible] णंदि [illegible]।
[illegible] तिलोय [illegible] खमंतु [illegible] सुदाइरिया॥

अर्थात अभयनन्दि के शिष्य अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनि ने त्रिलोकसार बनाया है। बहुश्रुत धारक आचार्य इसका संशोधन करें।

ठीक यही आशय द्रव्यसंग्रह की अन्तिम गाथा में स्पष्ट होता है.—

[illegible] दोससंचयचुदा सुद [illegible]।
सोधयंतु [illegible] मिचंदमुणिणा [illegible] जं॥

अर्थात अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनि के बनाये द्रव्यसंग्रह का, बहुश्रुतधारक आचार्य संशोधन करें।

इससे मालूम होता है कि दोनो ग्रन्थों के रचयिता एकही आचार्य नेमिचन्द्र है।

आचार्य संस्कृत, प्राकृत और कर्नाटकी के प्रखर विद्वान थे। आपके प्रमुख शिष्य माधवचन्द्र "त्रैविद्य" थे। आपने आचार्य के रचे त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों की टीकायें की है। आप भी तीन विद्याओं के स्वामी थे। 'त्रैविद्य" आपका पद था।

आचार्य का विशेष जीवन-परिचय प्राप्त होने पर ही लिखा जा सकता है।

द्रव्यसंग्रह

सरल जैन ग्रन्थ माला
जबलपुर

॥ श्री ॥

वीतरागाय नमः

द्रव्यसंग्रह ।

टीकाकार का मंगलाचरण

शंकर ब्रह्मा बुद्ध शिव, वे है जिन भगवान ।
"विश्व" तत्व जिन ज्ञान में, प्रकटत मुकुर समान ॥

ग्रन्थकर्त्ता का मंगलाचरण

प्राकृत गाथा

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

जीवं अजीवं द्रव्यं जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम् ।
देवेन्द्रवृन्दवन्द्यं वन्दे तं सर्वदा शिरसा ॥१॥

अन्वयार्थ—(जेण) जिस (जिणवरवसहेण) वृषभ भगवान ने (जीवमजीव) जीव और अजीव (दव्व) द्रव्य का (णिद्दिट्ठं) वर्णन किया है, (देविंदविंदवंद) देवेन्द्रों के समूह से नमस्कार करने योग्य (तं) उस प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव को मैं 'नेमिचन्द्र आचार्य' (सिरसा) मस्तक नमा कर (वंदे) नमस्कार करता हूं ॥१॥

---

* भवणालयचालीसा विंतरदेवाण होंति बत्तीसा ।
कप्पामरचउवीसा चंदो सूरो णरो तिरिओ ॥

भावार्थ—"जिणवरवसहेण" का अर्थ 'वृषभ जिनेन्द्र द्वारा' होता है अथवा "जिन" का अर्थ मिथ्यात्व और रागादि को जीतने वाला है। इसलिये असंयतसम्यग्दृष्टि, श्रावक और मुनि भी 'जिन' कहे जा सकते हैं। इनमें गणधर आदि श्रेष्ठ-जिन अर्थात् जिनवर हैं। इनके भी प्रधान तीर्थंकर देव हैं। इसलिये 'जिनवरवृषभ" से चौबीसों तीर्थंकर भी समझे जा सकते हैं।

जीवद्रव्य के ९ अधिकार

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥२॥

जीवः उपयोगमयः अमूर्त्तिः कर्त्ता स्वदेहपरिमाणः ।
भोक्ता संसारस्थः सिद्धः सः विस्रसा ऊर्ध्वगतिः ॥२॥

अन्वयार्थ —(सो) वह जीव (जीवो) इन्द्रिय आदि प्राणों से जीता है, (उवओगमओ) उपयोगमय है, (अमुत्ति) अमूर्त्तिक है, (कत्ता) कर्त्ता है, (सदेहपरिमाणो) नामकर्म के उदय से मिले अपने छोटे या बड़े शरीर के बराबर रहता है, (भोत्ता) भोक्ता है, (संसारत्थो) संसार में रहने वाला है, (सिद्धो) सिद्ध है और (विस्ससोड्ढगई) अग्नि की शिखा-लौ के समान स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करता है ॥ २ ॥

अर्थ.—भवनवासीदेवों के ४०, व्यन्तरदेवों के ३२, कल्पवासीदेवों के २४, ज्योतिषीदेवों के १ चन्द्रमा, १ सूर्य, मनुष्यों का १ चक्रवर्त्ती और तिर्यञ्चों का १ सिंह (४०+३२+२४+२+१+१=१००) इस प्रकार सौ इन्द्र होते हैं।

भावार्थः—१ जीवत्व, २ उपयोगमयत्व, ३ अमूर्तित्व, ४ कर्तृत्व, ५ स्वदेहपरिमाणत्व, ६ भोक्तृत्व, ७ संसारित्व, ८ सिद्धत्व और ९ विस्रसा ऊर्ध्वगमनत्व ये जीव के ९ अधिकार हैं।

१. जीवाधिकार।

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउ आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥
३. त्रिकाले चतुःप्राणाः इन्द्रियं बलं आयुः आनप्राणः च।
व्यवहारात् सः जीवः निश्चयनयतः तु चेतना यस्य ॥३॥

अन्वयार्थः—(जस्स) जिसके (ववहारा) व्यवहारनय से (तिक्काले) भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में (इंदिय) इन्द्रिय, (बल) बल, (आउ) आयु (य) और (आणपाणो) श्वासोच्छ्वास ये (चदुपाणा) चार प्राण होते हैं (दु) और (णिच्छयणयदो) निश्चयनय से जिसके (चेदणा) चेतना है (सो) वह (जीवो) जीव है ॥३॥

भावार्थः—५ इन्द्रियाँ (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) ३ बल (मन, वचन, काय), १ आयु और १ श्वासोच्छ्वास ये दस प्राण जिसके हों वह व्यवहारनय* से जीव है और जिसके चेतना (ज्ञान और दर्शन) हो वह निश्चयनय से जीव है।

व्यवहारनय और निश्चयनय। "तत्त्वार्थं निश्चयो वक्ति, व्यवहारो जनोदितम्।" अर्थात् पदार्थ के असली स्वरूप को

---

* पदार्थ के एक अंश को जानने वाला 'नय' है। इसके दो भेद हैं —

बताने वाला निश्चयनय है। जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना। जो लौकिक अर्थात् दूसरे पदार्थ के संयोग से दशा होती है, उसे बतावे वह व्यवहारनय है। जैसे—मिट्टी के घड़े में घी, दूध, पानी आदि रखे जाने पर उसे घी का घड़ा आदि कहना।

व्यवहारनय से जीव के कितने प्राण होते हैं:—

जीव	इन्द्रियां	बल	आयु	श्वासोच्छ्वास	प्राणसंख्या
एकेन्द्रिय	स्पर्शन	काय	,,	,,	४
द्वीन्द्रिय	,, रसना	वचन ,,	,,	,,	६
त्रीन्द्रिय	,, ,, घ्राण	,, ,,	,,	,,	७
चतुरिन्द्रिय	,, ,, ,, चक्षु	,, ,,	,,	,,	८
पंचेन्द्रिय सैनी	,, ,, ,, ,, कर्ण	,, ,,	,,	,,	९
पंचेन्द्रिय असैनी	,, ,, ,, ,, ,,	मन ,, ,,		,,	१०

२. उपयोगाधिकार।

दर्शनोपयोग के भेद।

उवओगो दुवियप्पो दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥
उपयोगः द्विविकल्पः दर्शनं ज्ञानं च दर्शनं चतुर्द्धा।
चक्षुः अचक्षुः अवधिः दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥४॥

अन्वयार्थः—(उवओगो) उपयोग (दुवियप्पो) दो प्रकार का है। (दंसण) दर्शन (च) और (णाण) ज्ञान। इनमें से (दंसण) दर्शनोपयोग (चदुधा) चार प्रकार का (णेयं) जानना चाहिये:—

(चक्खु) १. चक्षुदर्शन, (अचक्खू) २ अचक्षुदर्शन, (ओही) ३ अवधिदर्शन (अध) और (केवलं दंसणं) केवलदर्शन ॥४॥

भावार्थ—उपयोग दो प्रकार का है—दर्शन और ज्ञान। दर्शनोपयोग के चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवल-दर्शन ये चार भेद हैं। १. चक्षुदर्शन—चक्षुइन्द्रिय से मूर्त्तिक पदार्थों की सत्तामात्र को जानने वाला। २ अचक्षुदर्शन—चक्षु इन्द्रिय के सिवाय अन्य इन्द्रियों तथा मन से पदार्थों की सत्तामात्र को जानने वाला। ३. अवधिदर्शन—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों की सत्तामात्र का जानने वाला। ४. केवलदर्शन—लोक और अलोक के समस्त पदार्थों की सत्तामात्र का जानने वाला।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥५॥
ज्ञानं अष्टविकल्पं मतिश्रुतावधयः अज्ञानज्ञानानि।
मनःपर्य्ययः केवलं अपि प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च ॥५॥

अन्वयार्थ—(णाणं) ज्ञानोपयोग (अट्ठवियप्पं) आठ प्रकार का है। इनमें (मदिसुदओही) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधि-ज्ञान ये तीन (अणाणणाणाणि) अज्ञान अर्थात मिथ्याज्ञान कुमति, कुश्रुत और कुअवधि और ज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान—सुमति, सुश्रुत और सुअवधि इस प्रकार छह तथा (मणपज्जय) मनःपर्य्ययज्ञान (अवि) और (केवलं) केवलज्ञान। सब मिलाकर ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं। (च) और यह ज्ञानोपयोग (पच्चक्ख-परोक्खभेयं) प्रत्यक्ष तथा परोक्ष भेदवाला भी है।

भावार्थः—कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये तीन ज्ञानोपयोग मिथ्यादृष्टियों के होते हैं। सुमति, सुश्रुत, सुअवधि ये तीन ज्ञानोपयोग सम्यग्दृष्टियों के होते हैं। मनःपर्ययज्ञान विशेष-संयमी मुनियों के होता है और केवलज्ञान अरहन्त और सिद्ध परमेष्ठी के होता है। ज्ञानोपयोग के सब आठ भेद होते हैं।

ज्ञानोपयोग के प्रत्यक्ष* और परोक्ष ये दो भेद भी होते हैं।

उपयोग जीव का स्वरूप है:—

अट्ठ चदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥
अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्यं जीवलक्षणं भणितम् ।
व्यवहारात् शुद्धनयात शुद्धं पुनः दर्शनं ज्ञानम् ॥६॥

अन्वयार्थः—(ववहारा) व्यवहारनय से (अट्ठचदुणाणदंसण) आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन (सामण्णं) साधारण (जीवलक्खणं) जीव का लक्षण है। (पुण) और (सुद्धणया) शुद्धनिश्चयनय से (सुद्धं) शुद्ध (दंसण) दर्शन और (णाणं) ज्ञान ही जीव का लक्षण है ॥६॥

---

* मइसुयपरोक्खणाणं ओही मण होइ वियलपच्चक्खं ।
केवलणाणं च तहा अणोवमं होइ सयलपच्चक्खं ॥

अर्थः—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्ष ज्ञान हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान विकलप्रत्यक्ष अथवा देशप्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल-प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और मनकी सहायता से होने वाले ज्ञान को **परोक्षज्ञान** कहते हैं। इसका एक भेद साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय आदि की सहायता बिना केवल आत्मा की सहायता से होने वाला ज्ञान **प्रत्यक्षज्ञान** कहलाता है।

उपयोग

दर्शन

चक्षु (१) अचक्षु (२) अवधि (३) केवल (४)

ज्ञान

परोक्ष

मति

कुमति (५) सुमति (६)

श्रुत

कुश्रुत (७) सुश्रुत (८)

विकल

अवधि

कुअवधि (९) सुअवधि (१०)

प्रत्यक्ष

मनःपर्यय (११)

सकल

केवल (१२)

(गाथा ४-५ और ५वीं गाथा की टिप्पणी के अनुसार)

भावार्थः—जीव व्यवहारनय से ज्ञान और दर्शन के भेद करने पर १२ उपयोगवाला है और निश्चयनय से भेद न करने पर हरएक जीव शुद्धदर्शन और शुद्धज्ञान उपयोगवाला है ।

३. अमूर्तित्व अधिकार

वरणरस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥७॥
वर्णाःरसाः पञ्च गन्धौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे ।
नो संति अमूर्त्तिः ततः व्यवहारात मूर्त्तिः बन्धतः ॥७॥

अन्वयार्थ.—(णिच्चया) निश्चयनय से (जीवे) जीवद्रव्य में (वरणरसपंच) पाँच वर्ण, पाँच रस, (दो गंधा) दो गंध और (अट्ठ) आठ (फासा) स्पर्श (णो) नहीं (संति) होते हैं (तदो) इस लिये जीव (अमुत्ति) अमूर्त्तिक है और (ववहारा) व्यवहार-नय से (बंधादो) कर्म्मबन्ध के होने से जीव (मुत्ति) मूर्त्तिक है ॥७॥

भावार्थः—निश्चयनय से जीव में वर्ण आदि २० गुण नहीं होते इसलिये वह अमूर्त्तिक है और कर्मबन्ध के कारण व्यवहारनय से जीव मूर्त्तिक है । पुद्गल में २० गुण होते हैं इसलिये वह 'मूर्त्तिक' है ॥७॥

४. कर्तृत्व अधिकार ।

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥

पुद्गल के २० गुण

वर्ण (५)
रस (५)
गन्ध (२)
स्पर्श (८)
पीला
नीला
काला
लाल
सफेद
सुगन्ध
दुर्गन्ध
तीखा
कड़ुआ
कषायला
मीठा
खट्टा
हलका
भारी
रूखा
चिकना
ठंडा
गरम
मुलायम
कठोर

पुद्गलकर्म्मादीनां कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।
चेतनकर्म्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥८॥

अन्वयार्थः—(ववहारदो) व्यवहारनय से (आदा) आत्मा-जीव (पुग्गलकम्मादीणं) पुद्गलकर्म आदि का (कत्ता) कर्त्ता है। (दु) और (णिच्छयदो) अशुद्धनिश्चयनय से (चेदणकम्माणं) चेतनकर्म्मों का कर्त्ता है तथा (सुद्धणया) शुद्धनिश्चयनय से (सुद्धभावाण) शुद्धज्ञान व शुद्धदर्शन स्वरूप चेतन्यादि भावों का कर्त्ता है ॥८॥

भावार्थ—व्यवहारनय से ज्ञानावरण आदि पुद्गलकर्म और शरीर आदि नोकर्मो का करने वाला है। अशुद्धनिश्चय-नय से रागादि चेतनभावों का करने वाला है और शुद्ध-निश्चयनय से शुद्धज्ञान तथा शुद्धदर्शन स्वरूप चेतन्यादिभावों का करने वाला है।

हर एक जीव तीनों अपेक्षाओं से कर्त्ता देखा जा सकता है। मूल स्वभाव की अपेक्षा हर एक जीव शुद्धदर्शन आदि भावों का ही कर्त्ता है।

५. भोक्तृत्व अधिकार।

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥
व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्म्मफलं प्रभुङ्क्ते।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥९॥

अन्वयार्थः—(ववहारा) व्यवहारनय से (आदा) जीव

(पुग्गलकम्मफलं) पुद्गलकर्मों के फल (सुहदुक्खं) सुख और दुःख को (पभुंजेदि) भोगने वाला है और (णिच्चयणयदो) निश्चयनय से (खु) नियम पूर्वक (आदस्स) आत्मा के (चेदण-भावं) चैतन्यभावों को भोगता है ॥९॥

भावार्थः—'व्यवहारनय' से जीव ज्ञानावरण आदि कर्मों के फल रूप सुख दुःख को भोगता है, 'निश्चयनय' से आत्मा के शुद्ध दर्शन और शुद्धज्ञान स्वरूप भावों को भोगता है और अशुद्धनिश्चयनय से सुखदुःखमय भावों को भोगता है ॥९॥

६. स्वदेहपरिमाणत्व अधिकार ।

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥
अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पाभ्यां चेतयिता ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतः असंख्यदेशः ॥१०॥

अन्वयार्थः—(ववहारा) व्यवहारनय से (चेदा) जीव (उवसंहारप्पसप्पदो) शरीरनामकर्म से होने वाले संकोच *

---

* जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो सदेहमत्तं पभासयदि ॥

अर्थः—जैसे दूध में डाला हुवा पद्मरागमणि दूध को अपनी कान्ति से प्रकाशमान करता है वैसे ही संसारी जीव अपने शरीर के बराबर ही रहता है। दूध गरम करने पर उफनता है तब दूध के साथ ही पद्मरागमणि की कान्ति भी बढ़ जाती है। इसी तरह पौष्टिक (ताकत बढ़ाने वाला) भोजन करने पर शरीर मोटा हो जाता है और उसके साथ ही आत्मा के प्रदेश भी फैल जाते हैं तथा भोजन रूखा सूखा मिलने पर शरीर दुबला हो जाता है तब जीव के प्रदेश भी सिकुड़ जाते हैं।

और विस्तार गुण के कारण (असमुहदो) समुद्घात ⁂ अवस्था को छोड़कर (अणुगुरुदेहपमाणो) अपने छोटे या बड़े शरीर के बराबर रहता है (वा) और (णिच्छयणयदो) निश्चयनय से (असंखदेसो) लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश वाला है ॥१०॥

भावार्थः—जीव व्यवहारनय से, समुद्घात को छोड़कर अपने छोटे या बड़े शरीर के बराबर है और निश्चयनय से असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाश के बराबर है।

⁂ मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु॥

अर्थ—मूलशरीर को न छोड़कर आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है। इसके सात भेद होते हैं,—

१. **वेदना**—अधिक दुःख की दशा में मूलशरीर को न छोड़कर जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।

२. **कषाय**—क्रोध आदि तीव्र कषाय के उदय से धारण किये हुये शरीर को न छोड़कर जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।

३. **विक्रिया**—विविध क्रिया करने के लिये मूलशरीर को न छोड़कर आत्मा के प्रदेशों का बाहर फैलना।

४. **मारणान्तिक**—जीव मरते समय तुरत ही शरीर को नहीं छोड़ता किंतु शरीर में रहते हुये ही जन्मस्थान को स्पर्श करने के लिये आत्मा के प्रदेश बाहर निकलते हैं।

५. **तैजस**—यह दो प्रकार का होता है। शुभ और अशुभ। संसार को रोग अथवा दुर्भिक्ष से दुःखी देख कर महामुनि को कृपा उत्पन्न होने पर संसार की पीड़ा दूर करने के लिये तपस्या के बल से, मूलशरीर को न

७. संसारित्व अधिकार

पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः विविधस्थावरैकेन्द्रियाः ।
द्विकत्रिकचतुःपञ्चाक्षाः त्रसजीवाः भवन्ति शंखादयः ॥११॥

अन्वयार्थ.—(पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (विविहथावरेइंदी) अनेक प्रकार के स्थावर एकेन्द्रिय जीव होते हैं और (संखादी) शंख आदि (विगतिगचदुपंचक्खा) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय (तसजीवा) त्रसजीव (होंति) होते हैं ॥११॥

छोड़कर दाहिने कंधे से पुरुष के आकार का सफेद पुतला निकलता है और दुःख दूर कर अपने शरीर में प्रवेश करता है वह **शुभ तैजस** है। अनिष्ट कारक पदार्थों को देखकर मुनियों के हृदय में क्रोध होने पर बायें कंधे से पुरुषाकार सिन्दूर रंग का पुतला निकल कर, जिस पर क्रोध आया हो उसे नष्ट कर देता है; साथही उस मुनि को भी नष्ट कर देता है इसे **अशुभतैजस** कहते हैं।

६. **आहारक**—छठे गुणस्थान के किसी परम ऋद्धिधारी मुनि को, तत्सम्बन्धी शंका होने पर उसे तप के बल से, मूलशरीर को न छोड़कर मस्तक से एक हाथ बराबर पुरुषाकार सफेद और शुभ पुतला निकल कर केवली अथवा श्रुतकेवली के पास जाकर उनके चरणों का स्पर्श करते ही अपनी शंका दूर कर अपने स्थान में प्रवेश करता है।

७. **केवल**—केवलज्ञान उत्पन्न होने पर मूलशरीर को न छोड़कर दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण क्रिया द्वारा केवली के आत्मा के प्रदेशों का फैलना।

भावार्थः—संसारी जीवों के मुख्य दो भेद हैं— स्थावर और त्रस। पृथिवी आदि स्थावर "एकेन्द्रिय जीव" हैं और द्वितीय से पञ्चेन्द्रिय तक के शंख वगैरह "त्रसजीव" कहलाते है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव विकलत्रय कहे जाते हैं।

चौदह जीवसमास‡

समणा अमणा णेया पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहुमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥
समनस्काःअमनस्काः ज्ञेयाः पञ्चेन्द्रियाः निर्मनस्काः परे सर्वे।
बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ताः इतरे च ॥१२॥

अन्वयार्थः—(पंचेदिय) पञ्चेन्द्रियजीव (समणा) मन सहित और (अमणा) मनरहित (णेया) जानने चाहिये और (परे सव्वे) दूसरे सब (णिम्मणा) मनरहित होते है। इनमें (एइंदी) एकेन्द्रियजीव (बादरसुहुमा) बादर और सूक्ष्म इस तरह दो प्रकार के होते है और ये (सव्वे) सब (पज्जत्त) पर्याप्त (य) तथा (इदरा) अपर्याप्त होते है ॥१२॥

भावार्थः—पंचेन्द्रियजीव के दो भेद है—सैनी और असैनी। एकेन्द्रियजीव के भी दो भेद है—बादर और सूक्ष्म। बादर एकेन्द्रिय जीव दूसरों को बाधा देते हैं और बाधा पाते है। ये किसी पदार्थ के आधार में रहते है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय

‡ जिसके द्वारा अनेक प्रकार के जीवों के भेद ग्रहण किये जावें उसे जीवसमास कहते है।

जीव समस्त लोकाकाश में फैले हुये हैं। ये न किसी को बाधा देते है और न किसी से बाधा पाते हैं।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव ये सब पर्याप्त † और अपर्याप्त होते है ॥१२॥

पर्याप्ति विवरण।

जीव	पर्याप्तिया	संख्या
एकेन्द्रिय	आहार शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास	४
विकलेन्द्रिय और असैनी पचेन्द्रिय	,, ,, ,, ,, भाषा	५
सैनी पचेन्द्रिय	,, ,, ,, ,, ,, मन	६

एक अन्तर्मुहूर्त मे पर्याप्ति पूर्ण होती है। अपर्याप्तक जीव एक श्वास में १८ बार जीते मरते है। नीरोग पुरुष की एक बार नाड़ी फड़कने के समय को श्वास कहते है। ४८ मिनिट में ३७७३ श्वास होते है।

जीव के अन्य भेद।

मग्गणगुणठाणेहिं य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

---

† जह पुण्णापुण्णाइं गिहघडवत्थादियाइं दव्वाइं।
तह पुण्णिदरा जीवा पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥

अर्थ—जिस प्रकार मकान, घड़ा और वस्त्र आदि द्रव्य पूरे और अधूरे होते हैं उसी प्रकार जीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं।

आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाणभासमणो।
चत्तारि पंच छप्पि य इगिविगलासण्णिसण्णीणं ॥

अर्थ—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये छह पर्याप्तियाँ होती हैं। एकेन्द्रियजीव की ४, द्वीन्द्रिय से असैनी पञ्चेन्द्रिय तक के जीवों की ५ और सैनीपचेन्द्रियजीवो की छह पर्याप्तियाँ होती है।

चौदह जीवसमास

त्रस — स्थावर

सकल — विकल

सैनी — असनी — द्वीन्द्रिय — त्रीन्द्रिय — चतुरिन्द्रिय

पर्याप्त (१) अपर्याप्त (२) पर्याप्त (३) अपर्याप्त (४) पर्याप्त (५) अपर्याप्त (६) पर्याप्त (७) अपर्याप्त (८) पर्याप्त (९) अपर्याप्त (१०)

बादर — सूक्ष्म

पर्याप्त (११) अपर्याप्त (१२) पर्याप्त (१३) अपर्याप्त (१४)

सैनी पर्याप्त और सैनी अपर्याप्त इस तरह कहना चाहिये। ये १४ जीवसमास होते हैं।

मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात् ।
विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात् ॥१३॥

अन्वयार्थः—(तह) तथा (संसारी) संसारी जीव (असुद्धणया) व्यवहारनय से (चउदसहिं) चौदह २ (मग्गणागुण-ठाणेहिं) मार्गणा और गुणस्थानों की अपेक्षा (हवंति) होते हैं (य) और (सुद्धणया) शुद्धनिश्चयनय से (सव्वे) सब जीव (हु) निश्चय (सुद्धा) शुद्ध (विण्णेया) जानने चाहियें ॥१३॥

भावार्थ.—ऊपर की १२वीं गाथा के अनुसार तथा मार्गणा और गुणस्थानों की अपेक्षा भी व्यवहारनय से जीव १४/१४ प्रकार के होते हैं। निश्चयनय से सभी जीव शुद्ध हैं और उनमें कोई भेद नहीं है।

जिनमें अथवा जहाँ जीव तलाश किये जावें उन अवस्थाओं को **मार्गणा*** कहते हैं। इसके गति आदि के भेद से १४ भेद हैं। जीवों के भावों के उन्नति करते हुये भेदों को **गुणस्थान** कहते हैं। ये मोह के उदय और योग के निमित्त से होते हैं। गृहस्थों के पहले के ५, साधुओं के छठे से

---

* गइइंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य।
सजमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे॥

अर्थः—१ गति (चार) २ इन्द्रिय (पाँच), ३ काय (छह), ४ योग (तीन), ५ वेद (तीन) ६ कषाय (पच्चीस), ७ ज्ञान (आठ), ८ संयम (पाँच तथा असंयम व संयमासंयम), ९ दर्शन (चार) १० लेश्या (छह), ११ भव्यत्व (दो), १२ सम्यक्त्व (छह), १३ संज्ञित्व (दो) और १४ आहार (दो) ये चौदह मार्गणायें हैं।

१२वें तक और केवली के अन्त के २ गुणस्थान ‡ होते हैं।

---

‡ मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो अपुव्व अणियट्ठ सुहुमो य॥
उवसंत खीणमोहो सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।
चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा॥

गुणस्थानों के नाम और लक्षण इस प्रकार हैं:—

१. **मिथ्यात्व**—मिथ्यादर्शन के उदय से सच्चे देव शास्त्र गुरु और तत्वों का श्रद्धान न होना।

२. **सासादन**—सम्यक्त्व प्राप्त कर मिथ्यात्वी हो जाना।

३. **मिश्र**—सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मिले परिणाम होना।

४. **अविरत-सम्यक्त्व**—सम्यक्त्व हो जावे किन्तु किसी प्रकार का व्रत या चारित्र धारण न करे।

५. **देशसंयत**—सम्यक्त्व सहित एकदेश-चारित्र पालना।

६. **प्रमत्तसंयत**—अहिंसादि महाव्रतों का पालना है परन्तु प्रमादवान है।

७. **अप्रमत्तसंयत**—प्रमादरहित होकर महाव्रतों का पालन करना है।

८. **अपूर्वकरण**—सातवें गुणस्थान से ऊपर अपनी विशुद्धता में अपूर्व रूप से उन्नति करना।

९. **अनिवृत्तिकरण**—आठवें गुणस्थान से अधिक उन्नति करना।

१०. **सूक्ष्मसाम्पराय**—(सूक्ष्मकषाय)— सब कषायों का उपशम या क्षय होना, केवल लोभकषाय का सूक्ष्मरूप से रहना।

११. **उपशान्तकषाय** (उपशान्तमोह)— कषायों का उपशम हो जाना।

१२. **क्षीणकषाय** (क्षीणमोह)—कषायों का क्षय हो जाना।

१३. **सयोगकेवली**—केवलज्ञान प्राप्त होगया हो लेकिन योग की प्रवृत्ति हो।

१४. **अयोगकेवली**—केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद मन, वचन और काय की प्रवृत्ति भी बन्द हो जाती है।

इसके बाद जीव **सिद्ध** कहलाता है।

८ व ९ सिद्धत्व व विस्रसा ऊर्ध्वगमनत्व अधिकार

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥१४॥
निष्कर्माणः अष्टगुणाः किञ्चिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः ।
लोकाग्रस्थिताः नित्याःउत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः ॥१४॥

अन्वयार्थः—(णिक्कम्मा) ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रहित, (अट्ठगुणा) सम्यक्त्व† आदि आठगुण सहित, (चरमदेहदो) अन्तिम शरीर से (किंचूणा) कुछ कम (णिच्चा) ध्रुव-अविनाशी (उप्पादवयेहिं) उत्पाद और व्यय से (संजुत्ता) सहित जीव (सिद्धा) सिद्ध हैं। यह सिद्धत्व अधिकार है। कर्मरहित जीवों का ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने के कारण (लोयग्गठिदा) तीन लोक के आगे के भाग में स्थित रहते हैं। यह विस्रसा ऊर्ध्वगमनत्व ‡ अधिकार है ॥१४॥

---

† सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुअव्वबाह अट्ठगुणा हुंति सिद्धाण ॥

अर्थः—मोहनीयकर्म के अभाव से **सम्यक्त्व**, ज्ञानावरणकर्म के अभाव से **ज्ञान**, दर्शनावरणकर्म के अभाव से **दर्शन**, अन्तरायकर्म के अभाव से **वीर्य**, नामकर्म के अभाव से **सूक्ष्मत्व**, आयुकर्म के अभाव से **अवगाहना**, गोत्रकर्म के अभाव से **अगुरुलघु**, और वेदनीयकर्म के अभाव से **अव्याबाध** गुण सिद्धों में होते हैं। आठ कर्मों के अभाव से आठ गुण होते हैं।

‡ पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को ।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥

अर्थः—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध से मुक्त होकर जीव

भावार्थः—सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों से रहित और सम्यक्त्व आदि आठ गुणों सहित होते हैं। सिद्ध अथवा मुक्तजीव के, छोड़े हुये पहिले के शरीर से कुछ कम आकार के उनके आत्मा के प्रदेश होते हैं। उनमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य गुण रहते हैं। लोक के अग्रभाग में सिद्धशिला है, उसके ऊपर तनुवातवलय में अनन्तानन्त सिद्ध रहते हैं। लोक के आगे धर्मास्तिकाय न होने के कारण नहीं जा सकते।

अजीवतत्व के भेद

अज्जीवो पुण णेयो पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥
अजीवः पुनः ज्ञेयः पुद्गलःधर्मः अधर्मः आकाशम्।
कालः पुद्गलः मूर्त्तः रूपादिगुणः अमूर्त्ताः शेषाः तु ॥१५॥

अन्वयार्थ—(पुण) फिर (पुग्गल) पुद्गल, (धम्मो) धर्म (अधम्म) अधर्म, (आयास) आकाश और (कालो) काल इनको (अज्जीवो) अजीवद्रव्य (णेओ) जानना चाहिये। इनमें से (पुग्गल) पुद्गलद्रव्य (रूवादिगुणो) रूप आदि गुणवाला है, (मुत्तो) मूर्त्तिक है (दु) और (सेसा) शेष द्रव्य (अमुत्ति) अमूर्तिक है ॥१५॥

ऊपर गमन करता है। संसारी जीव विदिशाओं में न जाकर आकाश के प्रदेशों की पंक्ति के अनुसार चारों छह दिशाओं (पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, ऊर्ध्व-ऊपर, अधः-नीचे) की ओर जाते हैं।

इति जीवाधिकार

भावार्थः—अजीव द्रव्य के ५ भेद होते हैं:—१ पुद्गल २ धर्म्म, ३ अधर्म्म, ४ आकाश और ५ काल। इनमें पुद्गल द्रव्य मूर्त्तिक + है और शेष द्रव्य अमूर्तिक ० है।

पुद्गलद्रव्य की पर्यायें।

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥
शब्दः बन्धः सूक्ष्मः स्थूलः संस्थानभेदतमश्छायाः।
उद्योतातपसहिताः पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(सद्दो) शब्द (बंधो) बन्ध (सुहुमो) सूक्ष्म (थूलो) स्थूल (संठाणभेदतमछाया) आकार, खंड, अन्धकार, छाया, (उज्जोदादवसहिया) उद्योत और आतप सहित (पुग्गलदव्वस्स) पुद्गलद्रव्य की (पज्जाया) पर्यायें हैं ॥१६॥

भावार्थः—शब्द आदि पुद्गलद्रव्य की दस * पर्यायें हैं।

+ **रूवादिगुणो मुत्तो** अर्थात् जिसमें रूप, रस गन्ध और स्पर्श गुण पाये जावें उसे **मूर्त्तिक** कहते हैं।

० जिन द्रव्य में रूप आदि न हों उसे **अमूर्तिक** कहते हैं।

१. वीणा आदि का स्वर **शब्द**, २ लाख और लकड़ी आदि का जुड़ना **बन्ध**, ३ अनार से बेर वगैरह का छोटा होना **सूक्ष्म**, ४ बेर से आंवला वगैरह का बड़ा होना **स्थूल**, ५ त्रिकोण त्रिकोण वगैरह **आकार**, ६ गेहूँ का दलिया आटा वगैरह **खंड**, ७ दृष्टि को रोकने वाला **अन्धकार**, ८. धूप में मनुष्य आदि और दर्पण में मुख आदि की **छाया**, प्रतिबिम्ब, ९, चन्द्रमा या चन्द्रकान्तमणि का प्रकाश **उद्योत**, और १०. सूर्य अथवा सूर्यकान्तमणि का प्रकाश **आतप**, कहलाता है।

धर्मद्रव्य का लक्षण ।

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥
गतिपरिणतानां धर्म्मः पुद्गलजीवानां गमनसहकारी ।
तोयं यथा मत्स्यानां अगच्छतां नैव सः नयति ॥१७॥

अन्वयार्थ.—(गइपरिणयाण) गति में परिणत (पुग्गलजीवाण) पुद्गल और जीवद्रव्य को (गमणसहयारी) चलने में सहायता देने वाला (धम्मो) धर्म्मद्रव्य है (जह) जैसे (मच्छाणं) मछलियों को (तोयं) पानी चलने में सहायता करता है किन्तु (सो) वह धर्मद्रव्य (अच्छंता) नहीं चलने वालों को (णेव) कभी नहीं (णेई) चलाता है ॥१७॥

भावार्थः—जीव और पुद्गलद्रव्य ही हिलते चलते है, दूसर द्रव्य नहीं। इनके चलने में धर्म्म द्रव्य सहायता करता है, प्रेरणा नहीं करता। पानी मछली को चलने में सहायता करता है लेकिन मछली को चलने के लिये प्रेरणा नहीं करता— जबरदस्ती नहीं चलाता है। अटारी या छत पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ मदद करती हैं, प्रेरणा नहीं करतीं।

विशेषः—धर्म और अधर्म शब्द से पुण्य और पाप नहीं समझना चाहिये बल्कि ये दोनों द्रव्य जैनधर्म्म में स्वतन्त्र रूप से माने गये हैं।

अधर्म्मद्रव्य का लक्षण ।

ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

स्थानयुतानां अधर्म्मः पुद्गलजीवानां स्थानसहकारी ।
छाया यथा पथिकानां गच्छतां नैव सः धरति ॥१८॥

अन्वयार्थः—(ठाणजुदाण) ठहरने वाले (पुग्गलजीवाण) पुद्गल और जीव द्रव्यों को (ठाणसहयारी) ठहरने में सहायता करने वाला (अधम्मो) अधर्म्मद्रव्य है (जह) जैसे (पहियाणं) मुसाफ़िरों को (छाया) छाया ठहरने में सहायता करती है किन्तु (सो) वह अधर्म्म द्रव्य (गच्छंता) चलने वाले जीव और पुद्गल द्रव्यों को (णेव) कभी नहीं (धरई) ठहराता है ॥१८॥

भावार्थः—ठहरने वाले जीव और पुद्गलद्रव्यों को ठहरने में अधर्म्म द्रव्य सहायता करता है । यदि मुसाफ़िर ठहरना चाहे तो वृक्ष की छाया ठहरने में सहायता करती है, जो चलना चाहे उसे प्रेरणा कर ठहराती नहीं है ।

आकाशद्रव्य का लक्षण ।

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥
अवकाशदानयोग्यं जीवादीनां विजानीहि आकाशम् ।
जैनं लोकाकाशं अलोकाकाशं इति द्विविधम् ॥१९॥

अन्वयार्थः—(जीवादीणं) जीव आदि द्रव्यों को (अवगास-दाणजोग्गं) अवकाश देने योग्य (जेण्हं) जिनेन्द्र भगवान का कहा हुवा (आयासं) आकाशद्रव्य (वियाण) जानना चाहिये। यह आकाशद्रव्य (लोगागासं) लोकाकाश और (अल्लोगागासं) अलोकाकाश (इदि) इस तरह (दुविहं) दो प्रकार का है ।

भावार्थः—जीव आदि सभी द्रव्यों को आकाश अवकाश

देता है। आकाशद्रव्य समस्त लोक में व्यापक है। तीन लोक के बाहर कोई द्रव्य नहीं रहता, उसे अलोकाकाश कहते है। तीन लोक में सभी द्रव्य रहते है इसलिये उसे लोकाकाश कहते हैं। आकाश द्रव्य अनन्त और अमूर्त्तिक है।

लोकाकाश और अलोकाकाश का लक्षण।

धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥
धर्माधर्मौ कालः पुद्गलजीवाः च सन्ति यावतिके।
आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकः उक्तः ॥२०॥

अन्वयार्थः—(जावदिये) जितने (आयासे) आकाश मे (धम्माधम्मा) धर्मद्रव्य और अधर्म्मद्रव्य, (कालो) कालद्रव्य (य) और (पुग्गलजीवा) पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य (संति) है (सो) वह (लोगो) लोकाकाश † है और (तत्तो) लोकाकाश के (परदो) बाहर (अलोगुत्तो) अलोकाकाश कहा गया है ॥२०॥

भावार्थः—जितमें स्थान मे सब द्रव्य देखे जावें उसको लोकाकाश कहते हैं और लोकाकाश के बाहर केवल आकाश है इसलिये उसे अलोकाकाश कहते हैः—

लोक के तीन विभाग हैः—ऊर्ध्व (ऊपर) मध्य (बीच) और अधः (नीचे), इन्हें ही तीन लोक कहते हैं। यही लोकाकाश कहा जाता है। इसके बाहर अनन्त अलोकाकाश कहलाता है।

---

† यत्र पुण्यपापफललोकनं स लोकः।

अर्थः—जहा पुण्य और पाप का सुख और दुःख रूप फल देखा जावे उसे **लोक** कहते हैं। यह जीव में देखा जाता है। जीवद्रव्य लोकाकाश में ही

कालद्रव्य का लक्षण व उसके भेदों का स्वरूप ।

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

द्रव्यपरिवर्तनरूपः यः सः कालः भवेत व्यवहारः ।
परिणामादिलक्ष्यः वर्त्तनालक्षणः च परमार्थः ॥२१॥

अन्वयार्थः—(जो) जो (दव्वपरिवट्टरूवो) द्रव्यों के पलटने में मिनिट, घंटा, दिन, महीना आदि रूप है और (परिणामादीलक्खो) परिणमन आदि लक्षणों से जाना जाता है (सो) वह (ववहारो कालो) व्यवहारकाल (हवेइ) है (य) और (वट्टणलक्खो) वर्त्तनालक्षण वाला (परमट्ठो) परमार्थकाल है ॥२१॥

भावार्थः—जो जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में सहकारी हो उसे कालद्रव्य कहते हैं। इसके दो भेद हैः—व्यवहारकाल और परमार्थकाल अथवा निश्चयकाल।

समय, घड़ी, प्रहर, दिन आदि को व्यवहारकाल कहते हैं। कुम्हार के चाक की कीली की तरह पदार्थों के परिणमन में जो सहकारी हो उसे परमार्थ अथवा निश्चयकाल कहते हैं। पदार्थों के पलटने में जो सहकारी है उसे ही वर्त्तना कहते हैं वर्तना ‡ लक्षण वाला कालाणु रूप निश्चयकाल है।

रहता है। अथवा—

लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः।

अर्थः—जहा जीव आदि द्रव्य देखे जावे उसे लोक कहते हैं।

‡ प्रतिद्रव्यपर्यायमन्तर्नीतैकसमया स्वसत्तानुभूतिर्वर्त्तना।

अर्थ—द्रव्य में प्रत्येक समय सूक्ष्मरूप से स्वसत्ता के अनुभव स्वरूप

निश्चयकाल का विशेष लक्षण

लोयायासपदेसे इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन् ये स्थिताःहि एकैकाः ।
रत्नानां राशिः इव ते कालाणवः असंख्यद्रव्याणि ॥२२॥

अन्वयार्थ—(इक्केक्के) एक एक (लोयायासपदेसे) लोकाकाश के प्रदेश पर (जे) जो (इक्केक्का) एक २ (कालाणू) काल के अणु (रयणाणं) रत्नों की (रासीमिव) राशि के समान (हु) अलग २ (ठिया) स्थित हैं (ते) वे कालाणु (असंखदव्वाणि) असंख्यातद्रव्य हैं।

भावार्थः—लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान कालाणु अलग २ स्थित हैं। जैसे रत्नों की राशि (ढेर) लगाने पर हर एक रत्न अलग २ रहता है उसी प्रकार लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक २ कालाणु पृथक् २ हैं। लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात होने के कारण कालद्रव्य भी असंख्यात द्रव्य है। इन्हीं कालाणुओं के निमित्त से सब द्रव्यों की अवस्था पलटती है।

परिवर्तन को **वर्त्तना** कहते हैं। यह **निश्चयकाल** है। जैसे—चावल आग से पक जाता है लेकिन बर्तन में पानी भर कर आग पर रखते ही नहीं पक जाता। धीरे २ एक २ समय बाद पकता जाता है।

"चावल पक गया" इत्यादि **व्यवहारकाल** है। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय पर्यायों के पलटन में "वर्त्तना" अन्तरङ्ग कारण है और परिणमन आदि रूप व्यवहारकाल में कारण है।

द्रव्यों का उपसंहार और अस्तिकाय

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पंच अत्थिकायादु ॥२३॥
एवं षड्भेदं इदं जीवाजीवप्रभेदतः द्रव्यम् ।
उक्तं कालवियुक्तम् ज्ञातव्याः पञ्च अस्तिकायाः तु ॥२३॥

अन्वयार्थः—(एवं) इस प्रकार (जीवाजीवप्पभेददो) जीव और अजीव के भेदों से (इद) यह (दव्वं) द्रव्य (छब्भेयं) छह तरह का (उक्त) कहा गया है (दु) और इनमें से (कालविजुत्तं) कालद्रव्य को छोड़कर (पंच) पाँच (अत्थिकाया) अस्तिकाय (णायव्वा) जानने चाहिये ॥२३॥

भावार्थः—जीव के मुख्य दो भेद है—जीव और अजीव। अजीव के पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म, आकाश और काल ये पाँच भेद है। कुल छह द्रव्य हुये। इनमें से काल को छोड़कर बाकी पाँच द्रव्य पंचास्तिकाय कहलाते है।

अस्तिकाय का लक्षण।

संति जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा ।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥
सन्ति यतः तेन एते अस्ति इति भणन्ति जिनवराः यस्मात् ।
कायाः इव बहुदेशाः तस्मात् कायाः च अस्तिकायाः च ॥२४॥

अन्वयार्थः—(जदो) क्योंकि (एदे) पाँच अस्तिकाय (संति) हैं (तेण) इसलिये (जिणवरा) जिनेन्द्र भगवान् (अत्थीति) "अस्ति" ऐसा (भणंति) कहते हैं। (य) और (जम्हा) क्योंकि

द्रव्य

- जीव
  - ससारी
    - त्रस
      - विकल
        - द्वीन्द्रिय
        - त्रीन्द्रिय
        - चतुरिन्द्रिय
      - सकल
        - पञ्चेन्द्रिय
          - सैनी
          - असैनी
    - स्थावर
      - बादर
        - पृथ्वी
        - जल
        - अग्नि
        - वायु
        - वनस्पति
      - सूक्ष्म
        - पृथ्वी
        - जल
        - अग्नि
        - वायु
        - वनस्पति
  - मुक्त
- अजीव
  - पुद्गल
  - धर्म्म
  - अधर्म्म
  - आकाश
    - लोक
    - अलोक
  - काल
    - व्यवहार
    - निश्चय

(काया इव) काय के समान (बहुदेसा) बहुत प्रदेश वाले हैं (तम्हा) इस लिये (काया) "काय" कहलाते हैं। (य) और मिलकर (अत्थिकाया) "अस्तिकाय" कहे जाते है ॥२४॥

भावार्थः—जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म और आकाश ये पाच द्रव्य है, इन्हे "अस्ति" कहा है। काय के समान बहुप्रदेशी है, इसलिये इनको "काय" कहते हैं। इस कारण ये पाँचों द्रव्य अस्तिकाय है। कालाणु एक एक प्रदेशवाला होता है। इसलिये उसको काय संज्ञा नही है। उसमें अस्तिपना है, कायपना नहीं, इसी कारण वह अस्तिकाय में नहीं गिना जाता।

द्रव्यों की प्रदेशसंख्या

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥
भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे।
मूर्त्ते त्रिविधाः प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः ॥

अन्वयार्थ.—(जीवे) एक जीव में, (धम्माधम्मे) धर्म्म और अधर्म्मद्रव्य में (असंखा) असंख्यात, (आयासे) आकाश में (अणंत) अनन्त और (मुत्ते) पुद्गल में (तिविह) संख्यात, असंख्यात और अनन्त तीनों प्रकार के (पदेसा) प्रदेश (होंति) होते है और (कालस्स) कालद्रव्य का (एगो) एक प्रदेश होता है (तेण) इसलिये (सो) वह कालद्रव्य (काओ) कायवान (ण) नहीं है ॥२५॥

भावार्थ.—एक जीव समस्त लोकाकाश में फैल सकता है। लोकाकाश में असंख्यात प्रदेश होते है। इसलिये जीव असंख्यात-प्रदेश वाला है। धर्म्म और अधर्म्मद्रव्य भी समस्त लोकाकाश

में, तिल में तेल के समान फैले हैं इसलिये ये दोनों द्रव्य भी असंख्यात प्रदेश वाले हैं। आकाश में अनन्त प्रदेश होते हैं क्योंकि आकाश लोकाकाश के भी बाहर है, उसकी कोई सीमा नहीं है। पुद्गल द्रव्य के अनन्त परमाणु है, परन्तु एक परमाणु अलग भी होता है और दो, चार, बीस, हजार, लाख परमाणु मिलकर छोटा या बड़ा स्कन्ध भी होता है। इसलिये पुद्गल को संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला कहा है। काल के अणु एक २ अलग रहते है—वे मिलकर स्कन्ध नहीं होते इस कारण कालद्रव्य कायवान् नहीं है।

विशेषः—धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य लोकाकाश में अनादिकाल से रहते है। ये अमूर्त्तिक है। इनके प्रदेश एक दूसरे प्रदेशों को रोकते नहीं है। जल, राख और बालु आदि मूर्त्तिक पदार्थों मे भी विरोध नहीं होता। अनादि-काल से सम्बन्ध रखने वाले अमूर्त्तिक द्रव्यों में कोई विरोध नहीं आ सकता।

पुद्गलपरमाणु कायवान् है।

एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

एकप्रदेशः अपि अणुः नानास्कन्धप्रदेशतः भवति।
बहुदेशः उपचारात तेन च कायः भणन्ति सर्वज्ञाः ॥२६॥

अन्वयार्थः—(एयपदेसो वि) एकप्रदेश वाला भी (अणू) पुद्गल का परमाणु (णाणाखंधप्पदेसदो) नाना स्कन्धरूप प्रदेश वाला होने के कारण (बहुदेसो) बहुप्रदेशी (होदि) होता है (य) और (तेण) इसलिये (सव्वण्हु) सर्वज्ञदेव पुद्गलपरमाणु

को (उवयाग) व्यवहारनय से (काम्रो) कायवान् (भणंति) कहते हैं ॥२६॥

भावार्थः—पुद्गल का एक परमाणु अनेक प्रकार के स्कन्धों के मिलने पर नानास्कन्ध रूप हो सकता है। इसलिये उसे कायवान् कहते है किन्तु कालाणु नानास्कन्धरूप नहीं हो सकता इसलिये कालाणु एकप्रदेशी है, कायवान् नहीं।

प्रदेश का लक्षण

जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुवट्ठद्धं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥
यावतिकं आकाशं अविभागिपुद्गलाणवष्टब्धम्।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्वाणुस्थानदानार्हम् ॥२७॥

अन्वयार्थः—(जावदियं) जितना (आयासं) आकाश (अविभागीपुग्गलाणुवट्ठद्धं) अविभागी पुद्गलपरमाणु द्वारा व्याप्त हो (तं) उसे (खु) ही (सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं) सब प्रकार के अणुओं को स्थान देने योग्य (पदेसं) प्रदेश (जाणे) जानना चाहिये ॥२७॥

भावार्थ.—आकाश के जितने क्षेत्र में पुद्गल का सबसे छोटा टुकडा आजावे उतने क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं। इसी प्रदेश में धर्म्म और अधर्म्म द्रव्य के प्रदेश, काल का अणु और पुद्गल के अनेक अणु, लोह मे आग के समान समा सकते है। इसलिये प्रदेश को सब द्रव्यों के अणुओं को स्थान देने योग्य कहा है।

छोटे से छोटा अणु, जिसका विभाग न हो सके उसे परमाणु कहते है।

इति अजीवाधिकारः

+ ॥ प्रथमोऽधिकारःसमाप्त ॥ +

प्रश्नावली ।

१, 'जिणवरवसहेण' का स्पष्ट अर्थ समझाओ ।

२. सौ इन्द्र कौन २ से है नाम बताओ ।

३. जीव के कितने अधिकार हैं ? वही जीव संसारी और वही जीव सिद्ध अधिकार में है या कैसे ?

४ जीव के प्राण कितने होते है ? व्यवहार और निश्चयनय से बताओ ।

५. ज्ञानोपयोग के कितने और कौन २ से भेद हैं ?

६ अमूर्त्तिक किसे कहते हैं ? संसारी जीव मूर्त्तिक है या अमूर्त्तिक ?

७ व्यवहार और निश्चयनय से जीव किसका कर्त्ता और भोक्ता है ? रागादि-भावो का भोक्ता है या नहीं ?

८. जीव का देहप्रमाण कितना है, स्पष्ट समझाओ ।

९ पंचेन्द्रियजीव कितने प्रकार के होते है ? जीवसमास मार्गणा और गुण-स्थान का क्या मतलब है ?

१०. असैनी पंचेन्द्रिय के कितने प्राण और कितनी पर्याप्तिया होती है ?

११ कालद्रव्य का उदाहरण सहित लक्षण बताओ । यह अस्तिकाय क्यो नही है ? अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

१२ द्रव्यो के प्रदेशो की संख्या बताओ ।

१३ पुद्गल का परमाणु अस्तिकाय क्यो है ?

१४ आकाश किसे कहते है ?

१५। प्रदेश में सब अणुओ को स्थान देने योग्य बताया है । उसे समझाओ ।

आस्रव आदि पदार्थों का वर्णन ।

आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

आस्रवबंधनसंवरनिर्जरमोक्षाः सपुण्यपापाः ये ।
जीवाजीवविशेषाः तान् अपि समासेन प्रभणामः ॥२८॥

अन्वयार्थः—(जे) जो (आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा) आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, (सपुण्णपावा) पुण्य और पाप सहित सात तत्व हैं वे (जीवाजीवविसेसा) जीव और अजीव द्रव्य के भेद हैं (ते वि) उनको भी (समासेण) संक्षेप से (पभणामो) कहते हैं ॥२८॥

भावार्थः—जीव और अजीव द्रव्य में आस्रव आदि पांच तत्व और पुण्य एवं पाप अर्थात् पदार्थ भी शामिल हैं।

आत्मा चेतन है और कर्म अचेतन। जीव और कर्म का अनादिकाल से सम्बन्ध है। आस्रव आदि जीव के भी होते हैं, अजीव के भी। जीवास्रव, अजीवास्रव आदि। इसी प्रकार सब समझने चाहिये।

अजीवास्रव आदि से द्रव्यास्रव आदि जानना चाहिये और जीवास्रव आदि से भावास्रव आदि समझना चाहिये। द्रव्यास्रव और भावास्रव आदि द्वारा आगे वर्णन करेंगे।

जीव, अजीव आस्रव, बन्ध संवर, निर्जरा मोक्ष ये ७ **तत्व** हैं इनमें पुण्य और पाप मिलाकर ९ **पदार्थ** कहलाते हैं। मोक्षमार्ग में ये ९ **पदार्थ** अवश्य जानने योग्य हैं। आस्रव आदि में जीव और अजीव अर्थात् आत्मा और कर्म दोनों का सबंध है। कर्मरहित आत्मा शुद्ध अर्थात् **मुक्त** कहलाता है।

जीव और अजीव में छहों **द्रव्य** सातों **तत्व** और नौ **पदार्थ** शामिल हैं।

भावास्रव और द्रव्यास्रव का लक्षण ।

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥
आस्रवति येन कर्म्म परिणामेन आत्मनः स विज्ञेयः ।
भावास्रवः जिनोक्तः कर्म्मास्रवणं परः भवति ॥२९॥

अन्वयार्थः—(अप्पणो) आत्मा के (जेण) जिस (परिणामेण) परिणाम से (कम्म) कर्म्म (आसवदि) आता है (सो) वह (जिणुत्तो) जिन भगवान का कहा हुवा (भावासवो) भावास्रव (विण्णेओ) जानना चाहिये और (कम्मासवण) पुद्गलकर्म्मों का आना (परो) द्रव्यास्रव (होदि) होता है ॥२९॥

भावार्थ.—जीवों के कर्मबन्ध के कारण को आस्रव कहते है। इसके दो भेद हैः—द्रव्यास्रव और भावास्रव। आत्मा के जिन रागादि भावों से पुद्गलद्रव्य कर्मरूप होते है, उन भावों को भावास्रव कहते है और जो कर्म्मरूप पुद्गलद्रव्य परिणमन करते है, उसे द्रव्यास्रव कहते है ॥२९॥

भावास्रवों के नाम और उनके भेद

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओऽथ विण्णेया ।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥२९॥
मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः अथ विज्ञेयाः ।
पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रय चत्वारः क्रमशः भेदाः तु पूर्वस्य ॥

अन्वयार्थः—(अथ) और (पुव्वस्स) भावास्रव के (मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोध आदि है (दु) और इनके (कमसो)

क्रम से (पण पण पणदह तिय चदु) पाँच, पाँच, पन्द्रह, तीन और चार ये ३२ (भेदा) भेद (विराणीया) जानने चाहिये ॥२६॥

भावार्थः—५ मिथ्यात्व*, ५ अविरति, १५ प्रमाद†, ३ योग और ४ कषाय इस प्रकार भावास्रव के ३२ भेद होते हैं।

द्रव्यास्रव के भेद।

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेयो जिणक्खादो ॥३१॥
ज्ञानावरणादीनां योग्यं यत् पुद्गलं समास्रवति।
द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेकभेदः जिनाख्यातः ॥३१॥

---

* **मिथ्यात्व**—पर पदार्थों से राग द्वेष रहित अपनी शुद्ध आत्मा के अनुभवन में श्रद्धान होना सम्यक्त्व है, यही आत्मा का निज भाव है। इसके विपरीत भाव को मिथ्यात्व कहते हैं।

अविरति—हिंसादिक पापों से तथा इन्द्रिय और मन के विषयों में प्रवृत्ति होने को अविरति कहते हैं।

प्रमाद—संज्वलन और नोकषाय के तीव्र उदय से अतिचार रहित चारित्र पालने में उत्साह न होना और स्वरूप की सावधानी न होना प्रमाद है।

योग—मन वचन और काय से नोकर्म ग्रहण करने की शक्तिविशेष को योग कहते हैं।

कषाय—संज्वलन और नोकषाय के मन्द उदय से उत्पन्न आत्मा के परिणामविशेष को कषाय कहते हैं।

† **विकहा तहा कसाया इंदिय णिद्दा तहेव पणओ य।**
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरस ॥

अर्थ— विकथा ४ कषाय, ५ इन्द्रिय, १ निद्रा और १ स्नेह (४+४+५+१+१=१५) इस प्रकार प्रमाद के पन्द्रह भेद हैं।

अन्वयार्थः—(णाणावरणादीणं) ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म्मों के (जोग्गं) होने योग्य (जं) जो (पुग्गल) कर्माणरूप पुद्गल (समासवदि) आता है (स) वह (अणेयभेयो) अनेक भेद वाला (दव्वासवो) द्रव्यास्रव (णेओ) जानना चाहिये। ऐसा (जिणक्खादो) जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥३१॥

भावार्थः—ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रूप होने योग्य कार्माणवर्गणा के पुद्गलस्कन्ध जो आते हैं उन्हें द्रव्यास्रव कहते हैं ॥

आठ कर्म्मों का संक्षेप में लक्षण कहते हैं:—

१. **ज्ञानावरण** जो जीव के ज्ञान को ढाके। इसके ५ भेद हैं।

२. **दर्शनावरण** जो जीव के दर्शन को ढाके। इसके ९ भेद हैं।

३. **वेदनीय** जो सुख और दुःख का अनुभव करावे और सुख दुःख की सामग्री पैदा करे। इसके दो भेद होते हैं।

४. **मोहनीय** जो चारित्र को न होने दे। इसके मुख्य दो भेद हैं। दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। जो जीव के सच्चे श्रद्धान को भ्रष्ट करके मिथ्यात्व पैदा करावे वह **दर्शनमोहनीय** है। इसके ३ भेद हैं। जो जीव के शुद्ध और शान्त चारित्र को बिगाड़ कर कषाय उत्पन्न करावे वह **चारित्रमोहनीय** है। इसके २५ भेद हैं। मोहनीय के कुल २८ भेद हैं।

५. **आयु**—जो जीव को नरक आदि के भव में रोक रहे। इसके ४ भेद हैं।

६. **नाम** जो शरीर को अनेक प्रकार का रूप पैदा करावे। इसके ९३ भेद हैं।

७. **गोत्र**—जो ऊँच और नीच अवस्था को प्राप्त करावे। इसके २ भेद हैं।

भावबन्ध और द्रव्यबन्ध का लक्षण ।

बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

बध्यते कर्म्म येन तु चेतनभावेन भावबन्धः सः ।
कर्मात्मप्रदेशानां अन्योन्यप्रवेशनं इतरः ॥३२॥

अन्वयार्थः—(जेण) जिस (चेदणभावेण) चैतन्यभाव* से (कम्म) कर्म्म (बज्झदि) बँधता है (सो) वह परिणाम (भावबंधो) भावबन्ध है (दु) और (कम्मादपदेसाणं) कर्म्म और आत्मा के प्रदेशों का (अण्णोण्णपवेसणं) एक दूसरे में मिलजाना (इदरो) द्रव्यबंध है ॥३२॥

भावार्थः—आत्मा के जिस विकारभाव से जीवात्मा में कर्म का बन्ध होता है उस विकारभाव को भावबन्ध कहते हैं। उस विकारभाव के कारण कर्मरूप पुद्गलपरमाणुओं का आत्मा के प्रदेशों में, दूध और पानी के समान मिल जाना द्रव्यबन्ध है।

बन्ध और उसके कारण ।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो ।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात् तु चतुर्विधः बन्धः ।
योगात् प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतः भवतः॥३२॥

---

८. **अन्तराय**—जो अन्तर डाले अथवा विघ्न पैदा करे। इसके ५ भेद हैं।

इस प्रकार आठ कर्मों के (५ + ९ + २ + २८ + ४ + ९३ + २ + ५ = १४८) एक सौ अड़तालीस भेद होते हैं। वास्तव में कर्मों के अनन्त भेद हैं।

अन्वयार्थः—(बंधो) बन्ध (पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा) प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से (चदुविधो) चार प्रकार का होता है। इनमें (पयडिपदेसा) प्रकृति और प्रदेशबन्ध (जोगा) योग से (दु) और (ठिदिअणुभागा) स्थिति और अनुभागबन्ध (कसायदो) कषाय से (होंति) होते हैं ॥३३॥

भावार्थ—बन्ध के चार भेद हैं.—१ प्रकृति, २ स्थिति, ३ अनुभाग (अनुभव) और ४ प्रदेश। प्रकृति और प्रदेशबन्ध मन, वचन और काय से तथा स्थिति और अनुभागबन्ध क्रोध आदि कषायों से होते हैं।

१. प्रकृति—कर्म जिस स्वभाव को लिये हुये है उसको प्रकृति कहते हैं। जैसेः—ज्ञानावरण कर्म की प्रकृति पदार्थों को न जानने देना और दर्शनावरण की पदार्थों को न देखने देना आदि। नीम कड़ुआ और गुड़ मीठा है। इसी प्रकार सब कर्मों की प्रकृति जाननी चाहिये।

२ स्थिति स्वभाव से नियमित काल तक नहीं छूटना, जैसे बकरी आदि के दूध में मीठापन है। मीठापन न छूटना स्थिति है। इसी प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों का पदार्थों को न जानने देना वगैरह स्वभाव नियमित काल तक न छूटना स्थितिबन्ध है।

३. अनुभाग—बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध में तीव्र, मध्यम और मन्द आदि रूप से चिकनाई पाई जाती है। इसी प्रकार कर्मपुद्‌गलों की शक्तिविशेष को अनुभाग अथवा अनुभवबन्ध है। अर्थात् कर्मफलशक्ति को अनुभाग कहते हैं।

४. प्रदेश—आये हुये कर्मपरमाणुओं का आत्मा के

प्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाही होना अर्थात् कर्म्मों की संख्या को प्रदेशबन्ध कहते हैं ।

भावसंवर और द्रव्यसंवर का लक्षण ।

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणो अण्णो ॥३४॥
चेतनपरिणामः यः कर्म्मणः आस्रवनिरोधने हेतुः ।
सः भावसंवरः खलु द्रव्यास्रवरोधनः अन्यः ॥३४॥

अन्वयार्थः—(जो) जो (चेदणपरिणामो) आत्मा का परिणाम (कम्मस्स) कर्म्म के (आसवणिरोहणे) आस्रव के रोकने में (हेऊ) कारण है (सो) वह (खलु) ही (भावसंवरो) भावसंवर है और (दव्वासवरोहणो) द्रव्यास्रव का न होना (अण्णो) द्रव्यसंवर है ॥३४॥

भावार्थः—आत्मा के जिस परिणाम से कर्म आना बन्द हो उसे भावसंवर और द्रव्यास्रव का न होना द्रव्यसंवर है।

भावसंवर के भेद ।

वदसमिदीगुत्तीओ * धम्माणुपिहा परीसहजओ य ।
चारित्तं बहुभेयं ० णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

---

* "वद" के स्थान में "तव" भी पाठ है । जिसका अर्थ १२ प्रकार के तप होगा ।

० "बहुभेया" भी पाठ है । जिसका अर्थ 'बहुत प्रकार के भावसंवर के भेद जानने चाहिये" । तब "बहुभेया भावसंवरविसेसा णायव्वा" ऐसा अन्वय होगा ।

भावसंवर के भेद

- व्रत ५
  - अहिंसा
  - सत्य
  - अस्तेय
  - ब्रह्मचर्य
  - अपरिग्रह
- समिति ५
  - ईर्या
  - भाषा
  - एषणा
  - आदाननिक्षेपण
  - उत्सर्ग
- गुप्ति ३
  - मन
  - वचन
  - काय
- धर्म १०
  - उत्तम क्षमा
  - मार्दव
  - आर्जव
  - शौच
  - सत्य
  - संयम
  - तप
  - त्याग
  - आकिंचन्य
  - ब्रह्मचर्य
- अनुप्रेक्षा १२
  - अनित्य
  - अशरण
  - संसार
  - एकत्व
  - अन्यत्व
  - अशुचि
  - आस्रव
  - संवर
  - निर्जरा
  - लोक
  - बोधिदुर्लभ
  - धर्म
- परीषहजय २२
  - क्षुधा
  - तृषा
  - शीत
  - उष्ण
  - दंशमशक
  - नाग्न्य
  - अरति
  - स्त्री
  - चर्या
  - निषद्या
  - शय्या
  - आक्रोश
  - वध
  - याचना
  - अलाभ
  - रोग
  - तृणस्पर्श
  - मल
  - सत्कारपुरस्कार
  - अज्ञान
  - प्रज्ञा
  - अदर्शन
- चारित्र ५
  - सामायिक
  - छेदोपस्थापना
  - परिहारविशुद्धि
  - सूक्ष्मसाम्पराय
  - यथाख्यात

५ + ५ + ३ + १० + १२ + २२ + ५ = ६२ भेद है।

५ व्रत के स्थान पर १२ तप रखने से ६९ भेद हो जावेंगे।

व्रतसमितिगुप्तयः धर्म्मानुप्रेक्षाः परीषहजयः च ।
चारित्रं बहुभेदं ज्ञातव्याः भावसंवरविशेषाः ॥३५॥

अन्वयार्थः—(वदसमिदीगुत्तीओ) व्रत, समिति, गुप्ति, (धम्माणुपिहा) धर्म्म, अनुप्रेक्षा, (परीसहजओ) परीषहजय (य) और (बहुभेयं) बहुत भेदवाला (चारित्तं) चारित्र ये (भावसवरविसेसा) भावसंवर के भेद (णायव्वा) जानने चाहिये ॥३५॥

भावार्थः—व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म्म, अनुप्रेक्षा (भावना), परीषहजय और चारित्र ये भावसंवर के भेद हैं।

व्रत—रागद्वेषादि विकल्पों से रहित होना व्रत है।

समिति—अपने शरीर से अन्य जीवों को पीड़ा न होने की इच्छा से यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करना समिति है।

गुप्ति—मन, वचन और काय को वश में करना गुप्ति है।

धर्म्म—जो संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में पहुंचावे उसे धर्म्म कहते हैं।

अनुप्रेक्षा (भावना)—बार २ विचार करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं।

परीषहजय—रागद्वेष और कलुषतारहित होकर क्षुधा आदि २२ परीषहों को मुनि महाराज सहन करते हैं इसे परीषहजय कहते हैं।

चारित्र—आत्मा के स्वरूप में स्थिर होना चारित्र है। इन सबके भेद चार्ट में दिये गये हैं।

निर्जरा का लक्षण और उसके भेद

जहकालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥
यथाकालं तपसा च भुक्तरसं कर्म्मपुद्गलं येन ।
भावेन सडति ज्ञेया तत्सडनं चेति निर्जरा द्विविधा ॥३६॥

अन्वयार्थः—(जहकालेण) समय आने पर (य) और (तवेण) तप के द्वारा (भुत्तरस) सुख दुःख रूप जिसका फल भोगा जा चुका है ऐसा (कम्मपुग्गलं) कर्म्मरूप पुद्गल (जेण) जिस (भावेण) भाव से (सडदि) सड़ जाता है उसे भावनिर्जरा (णेया) जाननी चाहिये (च) और (तस्सडनं) कर्म्मों का झरना द्रव्यनिर्जरा है (इदि) इस प्रकार (णिज्जरा) निर्जरा (दुविहा) दो प्रकार की होती है ॥३६॥

भावार्थः—निर्जरा के दो भेद हैः- १ द्रव्य और २ भाव। जिन भावों से कर्म्म छूटते हैं उनको भावनिर्जरा कहते हैं। भावनिर्जरा के भी दो भेद हैं.—सविपाक और अविपाक। कर्म्मों की स्थिति पूरी होने पर अर्थात फल देकर आत्मा से कर्म्मों का छूटना सविपाक निर्जरा है। तपश्चरण से कर्म्मों का छूटना अविपाक निर्जरा है॥ कर्म्मों का क्रमपूर्वक छूट जाना द्रव्यनिर्जरा है॥

मोक्ष के भेद और लक्षण।

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥३७॥
सर्वस्य कर्मणः यः क्षयहेतुः आत्मनः हि परिणामः।
ज्ञेयः सः भावमोक्षः द्रव्यविमोक्षः च कर्म्मपृथग्भावः ॥३७॥

अन्वयार्थः—(जो) जे (अप्पणो) आत्मा का (परिणामो) परिणाम (सव्वस्स) समस्त (कम्मणो) कर्म्मो के (खयहेदू) क्षय होने में कारण है (स हु) उसे ही (भावमोक्खो) भावमोक्ष (णेओ) जानना चाहिये (य) और (कम्मपुधभावो) आत्मा से द्रव्यकर्म्मों का पृथक् हो जाना (दव्वविमोक्खो) द्रव्यमोक्ष है ॥३७॥

भावार्थः— मोक्ष † के दो भेद हैः—भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष। आत्मा का जो परिणाम कर्म्मों के क्षय होने में कारण हो उसे भावमोक्ष कहते हैं और समस्त कर्म्मों का क्षय हो जाना द्रव्यमोक्ष है।

पुण्य और पाप का लक्षण।

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥
शुभाशुभभावयुक्ताः पुण्यं पापं भवन्ति खलु जीवाः।
सातं शुभायुः नाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च ॥३८॥

अन्वयार्थः—(जीवा) जीव (सुहअसुहभावजुत्ता) शुभ और अशुभ भावों से सहित होकर (खलु) ही (पुण्णं) पुण्यरूप और (पावं) पापरूप (हवंति) होते हैं। (सादं) सातावेदनीय, (सुहाउ) शुभ आयु, (णामं) शुभनाम और (गोदं) शुभगोत्र—उच्चगोत्र ये सब (पुण्णं) पुण्य प्रकृतियाँ हैं और (पराणि) असातावेदनीय,

† बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः॥ आत्मा से कर्मबन्ध के कारणों का अभाव और निर्जरा के द्वारा सब कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है।

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः॥

अर्थः—जैसे बीज के बिलकुल जल जाने पर अंकुर पैदा नहीं होता है वैसे ही कर्मरूप बीज के जल जाने पर अर्थात समस्त कर्म्मों का सर्वथा क्षय हो जाने पर संसार रूपी अंकुर पैदा नहीं होता अर्थात् जन्म मरण आदि कुछ नहीं होता है।

अशुभआयु, अशुभनाम और नीचगोत्र तथा चारों घातियाकर्म ये (पाचं) पापप्रकृतियाँ हैं ॥३८॥

भावार्थः—पुण्य और पाप के भी दो भेद हैः—द्रव्यपुण्य और भावपुण्य तथा द्रव्यपाप और भावपाप । पुण्यप्रकृतियों को द्रव्यपुण्य और शुभ परिणाम सहित जीव को भावपुण्य कहते हैं। इसी प्रकार पापप्रकृतियों को द्रव्यपाप और अशुभ परिणाम सहित जीव को भावपाप कहते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये ४ घातियाकर्म पापरूप है और वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, ये पुण्य और पाप दोनों रूप है।

प्रश्नावली

१. आस्रव आदि पदार्थों के नाम बताकर लिखो कि ये जीवरूप हैं या अजीवरूप ?
२. द्रव्यास्रव और भावास्रव में क्या अन्तर है आस्रव के कितने भेद हैं ? और कौन कौन ?
३. प्रकृति आदि बन्धों का लक्षण बताओ। बन्धों के कारण बताओ कि वे किससे होते हैं ? कषाय से कौनसा बन्ध होता है ?
४. प्रमाद किसे कहते है और उसके भेद बताओ।
५. भावनिर्जरा के भेदों का स्वरूप बताओ। भावनिर्जरा किसे कहते है ?
६. पुण्यकर्म और पापकर्म कौन २ से है ?
७. भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष किसे कहते है ? मुक्तजीव कहाँ रहते है ?
८. जीव पुण्य अथवा पाप सहित कब होता है ?
९. सवर, निर्जरा और मोक्ष तथा तत्व और पदार्थ में क्या अन्तर है ?
१०. द्रव्य और भाव का क्या अभिप्राय है ?
११. नौ पदार्थों का संक्षिप्त स्वरूप समझाओ।

=: इति द्वितीयोऽधिकारः :=

व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग

सम्मद्दंसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥
सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं मोक्षस्य कारणं जानीहि ।
व्यवहारात् निश्चयतः तत्त्रिकमयः निजः आत्मा ॥३९॥

अन्वयार्थः—(ववहारा) व्यवहारनय से (सम्मद्दंसण) सम्यग्दर्शन, (णाणं) सम्यग्ज्ञान और (चरण) सम्यक्-चारित्र इन्हें (मोक्खस्स) मोक्ष के (कारणं) कारण (जाणे) समझो और (णिच्चयदो) निश्चयनय से (तत्तियमइओ) सम्यग्दर्शन आदि सहित (णिओ) अपना (अप्पा) आत्मा ही मोक्ष का कारण है ॥३९॥

भावार्थः— मोक्षमार्ग [1] के दो भेद हैं- व्यवहार और निश्चय। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर व्यवहारमोक्षमार्ग है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप अपना आत्मा ही निश्चयमोक्षमार्ग है॥

[1] सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग.—अर्थ—सम्यग्दर्शन आदि तीनों मिलकर मोक्षमार्ग है। पृथक् २ सम्यग्दर्शन आदि नहीं। जैसे—कोई बीमार केवल दवा का नाम करने, ज्ञान करने और केवल उसका आचरण-सेवन करने से नीरोग नहीं हो सकता उसी प्रकार केवल सम्यग्दर्शन आदि से मोक्ष नहीं होता।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हता चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलान्धको दग्धः पश्यन्नपि च पंगुलः॥
संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञा नह्येकचक्रेण रथः प्रयाति।
अन्धश्च पंगुश्च वने प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ॥

निश्चयमोक्षमार्ग का विशेष कथन ।

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि ।
तह्मा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥
रत्नत्रयं न वर्त्तते आत्मानं मुक्त्वा अन्यद्रव्ये ।
तस्मात् तत्त्रिकमयः भवति खलु मोक्षस्य कारणं आत्मा ॥४०॥

अन्वयार्थः—(अप्पाणं) आत्मा को (मुयत्तु) छोड़कर (अण्णदवियम्हि) दूसरे द्रव्य में (रयणत्तयं) रत्नत्रय (ण) नहीं (वट्टइ) होता है (तह्मा) इसलिये (तत्तियमइओ) रत्नत्रयसहित (आदा) आत्मा (हु) ही (मोक्खस्स) मोक्ष का (कारण) कारण (होदि) होता है ॥४०॥

भावार्थः—जीव और अजीव ये मुख्य दो द्रव्य हैं। अजीव के पुद्गल आदि ५ भेद हैं। सम्यग्दर्शन आदि गुण केवल जीवद्रव्य में ही रहता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि आत्मा के गुण हैं। इसलिये रत्नत्रयस्वरूप आत्मा ही निश्चयमोक्षमार्ग है।

सम्यग्दर्शन का लक्षण ।

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

अर्थ—क्रिया रहित ज्ञान निष्फल है और ज्ञानरहित क्रिया निष्फल है। जैसे—दौड़ता हुआ अन्धा जल गया और देखता हुआ लँगड़ा जल गया। यदि अन्धा लँगड़े को, और लँगड़ा अन्धे की सहायता करने लगे तो दोनों दावानल (जंगल की आग) से बच सकते हैं। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र अर्थात् तीनों मिलकर **मोक्षमार्ग** है।

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं रूपं आत्मनः तत् तु ।
दुरभिनिवेशविमुक्तं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति सति यस्मिन् ॥४१॥

अन्वयार्थः—(जीवादीसद्दहणं) जीव आदि तत्वों का श्रद्धान करना (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन है और (तं) वह (अप्पणो) आत्मा का (रूवं) स्वरूप है, (जम्हि सदि) जिसके होने पर (हु) ही (दुरभिणिवेसविमुक्कं) विपरीत * अभिप्रायों से रहित (णाणं) ज्ञान (सम्मं) सम्यक्रूप (होदि) होता है ॥४१॥

भावार्थः—सात तत्वों का श्रद्धान करना व्यवहार-सम्यग्दर्शन है। आत्मा का श्रद्धान करना निश्चयसम्यग्दर्शन है। संशयादि रहित सम्यग्ज्ञान है किन्तु वह सम्यग्दर्शन के होने पर ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण ।

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयभेयं च ॥४२॥
संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं आत्मपरस्वरूपस्य ।
ग्रहणं सम्यक् ज्ञानं साकारं अनेकभेदं च ॥४२॥

* संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रूप ज्ञान को **दुरभिनिवेश** कहते हैं।

संशय—उभयकोटि को स्पर्श करने वाले ज्ञान को **संशय** कहते हैं। जैसे:—यह सीप है या चांदी।

विमोह, (अनध्यवसाय)—चलते हुए तिनके वगैरह का स्पर्श होने पर "कुछ होगा" ऐसा ज्ञान होना विमोह है।

विभ्रम (विपर्यय-विपरीत)—विपरीत पदार्थ को ही जानना। जैसे—सीप को चांदी समझना।

अन्वयार्थः— (संसयविमोहविब्भमविवज्जियं) संशय, विमोह और विभ्रमरहित (सायारं) आकार * सहित (अप्पपरसरूवस्स) अपने और पर के स्वरूप का (गहणं) ग्रहण करना (सम्मं) सम्यक् (णाणं) ज्ञान है (च) और वह सम्यग्ज्ञान (अणेयभेयं) अनेक प्रकार का है ॥४२॥

भावार्थः—संशयादि रहित एवं आकारसहित स्वपर पदार्थों का जानना सम्यग्ज्ञान है।

दर्शनोपयोग का लक्षण।

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समये ॥४३॥
यत् सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वा आकारम्।
अविशेषयित्वा अर्थान् दर्शनं इति भण्यते समये ॥४३॥

अन्वयार्थः—(अट्ठे) पदार्थों को (अविसेसिदूण) विशेषता न कर और (आयार) आकार को (णेव) नहीं (कट्टुं) ग्रहण कर (भावाण) पदार्थों का (जं) जो (सामण्णं) सामान्य (गहणं) ग्रहण करना है वह (दंसणं) दर्शन † है। (इदि) ऐसा (समये) शास्त्र में (भण्णए) कहा जाता है ॥४३॥

भावार्थः—पदार्थों के सामान्य ग्रहण करने को दर्शन कहते हैं। इसमें "यह काला है" या "यह बड़ा है" इत्यादि किसी प्रकार का विकल्प पैदा नहीं होता। अथवा आत्मा के उपयोग का पदार्थ की तरफ झुकना दर्शन है।

* विकल्प

† विषयविषयिसन्निपाते दर्शनम्—अर्थः—पदार्थ से इन्द्रिय के मिलने पर दर्शन होता है।

दर्शन और ज्ञान की उत्पत्ति होने का नियम

दंसणपुव्वं णाणं छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि ॥४४॥
दर्शनपूर्वं ज्ञानं छद्मस्थानाम् न द्वौ उपयोगौ।
युगपत् यस्मात् केवलिनाथे युगपत् तु तौ द्वौ अपि ॥४४॥

अन्वयार्थः—(छदुमत्थाणं) अल्पज्ञानियों ‡ के (दंसण-पुव्वं) दर्शनपूर्वक (णाणं) ज्ञान होता है (जह्मा) क्योंकि (दुण्णि) दोनों (उवओगा) उपयोग (जुगवं) एक साथ (ण) नहीं होते (तु) परन्तु (केवलिणाहे) केवलज्ञानी के (ते) वे (दो वि) दोनों ही (जुगवं) एक साथ होते हैं ॥४४॥

भावार्थः—अल्पज्ञानियों को पहिले दर्शन होता है, बाद में ज्ञान होता है और सर्वज्ञदेव को दर्शन और ज्ञान दोनों एक साथ होते हैं ॥

व्यवहारचारित्र का लक्षण और भेद

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥
अशुभात् विनिवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिः च जानीहि चारित्रम्।
व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयात् तु जिनभणितम् ॥४५॥

अन्वयार्थः—(असुहादो) अशुभ क्रियाओं से (विणिवित्ती)

---

‡ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान के धारक जीव **छद्मस्थ** अथवा अल्पज्ञानी कहलाते हैं। केवली भगवान् **सर्वज्ञ** हैं।

निवृत्त होना (य) और (सुहे) शुभक्रियाओं में (पवित्ती) प्रवृत्ति करना (ववहारणया) व्यवहारनय से (चारित्तं) चारित्र (जाण) जानना चाहिये (दु) और वह चारित्र (जिणभणियं) जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा हुवा (वदसमिदिगुत्तिरूवं) व्रत, समिति और गुप्तिस्वरूप है ॥४५॥

भावार्थः—अशुभ क्रियाओं को त्याग कर शुभ क्रियाओं में प्रवृत्ति करना व्यवहारसम्यक्चारित्र है। वह ५ व्रत, † ५ समिति और ३ गुप्ति के भेद से १३ प्रकार का होता है।

निश्चयचारित्र का लक्षण

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

बहिरभ्यन्तरक्रियारोधः भवकारणप्रणाशार्थम् ।
ज्ञानिनः यत् जिनोक्तम् तत् परमं सम्यक्चारित्रम् ॥४६॥

अन्वयार्थः—(भवकारणप्पणासट्ठं) संसार के कारणों का नाश करने के लिये (णाणिस्स) ज्ञानी का (जं) जो (बहिरब्भंतरकिरियारोहो) बाह्य † और अभ्यन्तर * क्रियाओं का रोकना है (तं) वह (जिणुत्तं) जिनेन्द्र भगवान् का कहा हुआ (परमं) उत्कृष्ट ‡ (सम्मचारित्तं) सम्यक्चारित्र है ॥४६॥

---

† व्रत आदि के नाम ५४ वीं गाथा के चार्ट में देखिये

† शुभ और अशुभ रूप वचन और कायकी क्रिया **बाह्यक्रिया** है। * शुभ अथवा अशुभ मन के विकल्प विचार करना **अभ्यन्तरक्रिया** कही जाती है।

‡ निश्चय

भावार्थः—ज्ञानी जीव संसार से बचने के लिये मन, वचन और काय से शुभ और अशुभ क्रियाओं को रोकता है, इससे आत्मा अधिक निर्मल बनता है। इसे ही निश्चयसम्यक्-चारित्र कहते हैं ॥

ध्यानाभ्यास करने की प्रेरणा

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

द्विविधं अपि मोक्षहेतुं ध्यानेन प्राप्नोति यत् मुनिः नियमात् ।
तस्मात् प्रयत्नचित्ताः यूयं ध्यानं समभ्यसत ॥४७॥

अन्वयार्थः—(जं) क्योंकि (मुणी) मुनि (णियमा) नियम से (दुविहं पि) दोनों ही (मोक्खहेउ) मोक्ष के कारणों को (झाणे) ध्यान से (पाउणदि) प्राप्त करता है (तह्मा) इसलिये (जूयं) तुम (पयत्तचित्ता) प्रयत्नशील होकर (झाणं) ध्यान † का (समब्भसह) अभ्यास करो ॥४७॥

भावार्थः—मुनि ,ध्यान में व्यवहार और निश्चय दोनों मोक्षमार्गों को प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये तुम्हें भी एकाग्र-चित्त होकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिये ॥

---

† उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्ः—

अर्थः—उत्तम (वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, और नाराच) संहनन वाले का एकाग्रतापूर्वक चिन्ता का रोकना **ध्यान** है। यह अन्तर्मुहूर्त्त अर्थात् दो घड़ी से कुछ कम समय तक रहता है। अन्य क्रियाओं से चित्त को हटाकर एक ही क्रिया में लगना **एकाग्रचिन्तानिरोध** कहलाता है।

ध्यान मे लीन होने का उपाय।

मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

मा मुह्यत मा रज्यत मा द्विष्यत इष्टानिष्टार्थेषु ।
स्थिर इच्छत यदि चित्तं विचित्रध्यानप्रसिद्ध्यै ॥४८॥

अन्वयार्थ.— (जइ) अगर (विचित्तझाणप्पसिद्धीए) विचित्त + अर्थात् अनेक प्रकार के ध्यानों को प्राप्त करने के लिये (चित्तं) चित्त को (थिरं) स्थिर करना (इच्छह) चाहते हो तो (इट्ठणिट्ठअत्थेसु) इष्ट ‡ और अनिष्ट † पदार्थों मे (मा मुज्झह) मोह मत करो, (मा रज्जह) राग मत करो और (मा दुस्सह) द्वेष मत करो ॥४८॥

भावार्थः—संसारी जीव इष्ट पदार्थों से मोह करते है और उन्हीं मे अधिक अनुराग करते है तथा अनिष्ट पदार्थों से द्वेष करते है। उत्तम ध्यान की प्राप्ति के लिये ऐसा नही करना चाहिये। संसार के विषयों मे राग, और द्वेष मोह करने से जीव संसारी बना रहता है। ध्यान मे निश्चयरत्नत्रय की प्राप्ति होती है क्योंकि ध्यान मे आत्मा का श्रद्धान व ज्ञान होता है और आत्मा आत्मा में ही लीन रहता है तथा हिंसादि पापों से बचाव भी होता है। इससे व्यवहाररत्नत्रय की प्राप्ति भी ध्यान मे होती है। इसलिये ध्यान करना परम आवश्यक है।

+ विचित्त का अर्थ शुभ और अशुभ विकल्प रहित और अनेक प्रकार के पदस्थ ध्यान आदि भी होता है।

‡ पुत्र, स्त्री धन, माला आदि।

† सर्प, शत्रु, विष कण्टक आदि।

ध्यान करने योग्य मन्त्र

पणतीस सोल छप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अगणं च गुरूवएसेण ॥४६॥

पञ्चत्रिंशत् षोडश षट् पञ्च चत्वारि द्विकं एकं च जपत ध्यायेत
परमेष्ठिवाचकानां अन्यत् च गुरूपदेशेन ॥४६॥

अन्वयार्थः—(परमेट्ठिवाचयाणं) परमेष्ठीवाचक† (पणतीस) पैंतीस, (सोल) सोलह, (छप्पण) छह, पाँच, (चदु) चार, (दुगं) दो, (च) और एक (च) तथा (गुरूवएसेण) गुरुओं के उपदेश से (अगणं) अन्य मन्त्र भी (जवह) जपो और (झाएह) उनका ध्यान करो ॥४६॥

भावार्थः—ध्यान करते समय परमेष्ठीवाचक मन्त्रों‡ की अथवा गुरुओं की आज्ञा से सिद्धचक्र आदि मंत्रों की जाप देनी चाहिये ॥

---

† अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये **पञ्चपरमेष्ठी** कहे जाते हैं।

‡ ध्यान करने योग्य मन्त्र —

पैंतीस अक्षरों का मन्त्र —

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ (सर्वपद)

सोलह अक्षरों का मन्त्रः—**अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू ।**
(नामपद)

छह अक्षरों के मन्त्र —**अरिहंत सिद्ध, अरहंत सिद्ध, अरहंत सि सा, ओं नमः सिद्धेभ्यः, नमोऽर्हत्सिद्धेभ्यः ।**

पाच अक्षरों के मन्त्र—**अ सि आ उ सा ।** (आदिपद)

चार अक्षरों के मन्त्रः—**अरहंत, असिसाहू, अरिहंत ।**

अरहन्तपरमेष्ठी का लक्षण।

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥
नष्टचतुर्घातिकर्म्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः।
शुभदेहस्थः आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीयः ॥५०॥

अन्वयार्थः—(णट्ठचदुघाइकम्मो) जिसने चारों घातियाकर्म्मों को नष्ट कर दिया है, (दंसणसुहणाणवीरियमईओ) अनन्तदर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्यसहित है, (सुहदेहत्थो) ऐसा सप्तधातुरहित परमौदारिक शरीर में स्थित और (सुद्धो) अठारह दोष रहित (अप्पा) आत्मा (अरिहो) अरहन्तपरमेष्ठी (विचिंतिज्जो) ध्यान करने योग्य है ॥५०॥

दो अक्षरों के मन्त्र - सिद्ध, अ आ, ओं ह्रीं।

एक अक्षर के मन्त्रः अ, ओम्।

"ओम्" कैसे बनता है :—

अरहंता असरीरा आयरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी ॥

अर्थः—पाँचों परमेष्ठियों के पहिले अक्षरों की सन्धि करने पर 'ओम्' बनता है। यहाँ नीचे बताते हैं:—

अरहन्त	अ	आ	आ	ओ	ओम्
अशरीर (सिद्ध)	अ				
आचार्य्य	आ				
उपाध्याय	उ				
मुनि (सर्वसाधु)	म्				

भावार्थः—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये ४ घातियाकर्म्म हैं। इनको नष्ट कर देने वाले, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य अर्थात अनन्तचतुष्टय धारण करने वाले, रक्त मांस आदि सात धातुओं से रहित, उत्तम परम औदारिक शरीर धारण करने वाले और जन्म जरा इत्यादि अठारह [1] दोष रहित देव ही अरहन्तपरमेष्ठी है ॥५०॥

सिद्धपरमेष्ठी का लक्षण ।

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥
नष्टाष्टकर्म्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञायकः द्रष्टा ।
पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायेत लोकशिखरस्थः ॥५१॥

अन्वयार्थः—(णट्ठट्ठकम्मदेहो) जिसने ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रूप शरीर को नष्ट कर दिया है, (लोयालोयस्स) लोक और अलोक को जानने वाला तथा (दट्ठा) देखने वाला है, (पुरिसायारो) देह रहित किन्तु पुरुष के आकार में रहनेवाला

---

[1] अठारह दोष --

क्षुधा तृषा भय द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम् ।
जरा रुजा च मृत्युश्च खेदः स्वेदो मदोऽरतिः ॥
विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश स्मृताः ।
एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो निरञ्जनः ॥

अर्थ—भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, बुढ़ापा, रोग मरण, खेद, स्वेद, मद, अरति, आश्चर्य, जन्म, निद्रा और शोक इन अठारह दोषों से रहित आप्त-देव अथवा अरहन्त कहलाते हैं।

(अप्पा) आत्मा (सिद्धो) सिद्धपरमेष्ठी है। उसका सदा (झाएह) ध्यान करना चाहिये ॥५१॥

भावार्थः—४ घातिया (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, और अन्तराय) ४ अघातिया (वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र) इन आठ कर्म्मों को नष्ट करने वाले, तीनलोक और तीनकाल के समस्त पदार्थों को दर्पण के समान—देखने जानने वाले, अन्तिम मनुष्य शरीर के आकार से कम, आत्मा के प्रदेशों का आकार धारण करने वाले और लोक के अग्रभाग मे रहने वाले सिद्ध-परमेष्ठी है। इनका सदा ध्यान करना चाहिये।

आचार्यपरमेष्ठी का लक्षण।

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥
दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतप आचारे।
आत्मानं परं च युनक्ति सः आचार्य्यः मुनिः ध्येय. ॥५२॥

अन्वयार्थ.—(दंसणणाणपहाणे) दर्शनाचार और ज्ञानाचार है प्रधान जिनमें ऐसे (वीरियचारित्तवरतवायारे) वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार इन पाँच आचारों में जो (मुणी) मुनि (अप्पं अपने को च) और (परं) दूसरे को (जुंजइ) लगाता है (सो) वह (आयरिओ) आचार्यपरमेष्ठी (झेओ ध्यान करने योग्य है ॥५२॥

भावार्थः—जो साधु दर्शन, ज्ञान, वीर्य, चारित्र और तप इन पाँच आचारों में स्वयं लीन रहते है—इनका आचरण करते है और दूसरों को भी इनका आचरण कराते हैं उन्हे आचार्य-परमेष्ठी कहते है। इनका सदा ध्यान करना चाहिये ॥५२॥

सम्यग्दर्शन में परिणमन करना दर्शनाचार, सम्यग्ज्ञान में लगना ज्ञानाचार, वीतरागचारित्र में लगना चारित्राचार, तप में लगना तपाचार और इन चारों आचारों के करने में अपनी शक्ति नहीं छिपाना वीर्याचार है।

उपाध्यायपरमेष्ठी का लक्षण।

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥
यः रत्नत्रययुक्तः नित्यं धर्म्मोपदेशने निरतः।
सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमः तस्मै ॥५३॥

अन्वयार्थ.—(जो) जो (रयणत्तयजुत्तो) रत्नत्रय सहित (णिच्चं) नित्य (धम्मोवएसणे) धर्म्मोपदेश करने में (णिरदो) लीन रहता है (सो) वह (जदिवरवसहो) यतियों में श्रेष्ठ (उवझाओ) उपाध्याय परमेष्ठी है। (तस्स) उसको (णमो) नमस्कार है ॥५३॥

भावार्थ —जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित है और सदा धर्म्म का उपदेश दिया करते है वे उपाध्याय परमेष्ठी है।

साधु का लक्षण

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥
दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य यः हि चारित्रम्।
साधयति नित्यशुद्धं साधुः सः मुनिः नमः तस्मै ॥५४॥

अन्वयार्थः—(जो) जो (मुणी) मुनि (दंसणणाणसमग्गं) दर्शन और ज्ञान सहित (मोक्खस्स) मोक्ष के (मग्गं) मार्गस्वरूप (णिच्चसुद्धं) सदा शुद्ध (चारित्तं) चारित्र को (साधयदि) साधता है (स) वह (साहू) साधुपरमेष्ठी है। (तस्स) उसको (णमो) नमस्कार है ॥५४॥

जो मुनि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को साधते है अर्थात् रत्नत्रय धारण करते है उन्हें साधु परमेष्ठी * कहते है। रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है।

ध्येय, ध्याता और ध्यान का लक्षण

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूण य एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥५५॥
यत् किञ्चित् अपि चिन्तयन् निरीहवृत्तिः भवति यदा साधुः।
लब्ध्वा च एकत्वं तदा आहुः तत् तस्य निश्चयं ध्यानम् ॥५५॥

अन्वयार्थः—(च) और (जदा) जब (साहू) साधु (एयत्तं) एकाग्रता को प्राप्त कर (जं किंचि वि) जो कुछ भी (चिंततो) विचार करता हुवा (णिरीहवित्ती) इच्छारहित होता है (तदा) तब (हु) ही (तस्स) उस साधु का (तं) वह ध्यान (णिच्चय) निश्चय (झाणं) ध्यान (हवे) होता है ॥५५॥

भावार्थः—जब साधु मन, वचन और काय की क्रियाओं को रोक कर समस्त अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग परिग्रह मे ममत्व

* आचार्य उपाध्याय और साधुपरमेष्ठी ये तीनो **गुरु, साधु** और **मुनि** कहलाते है। इन तीनो का बाह्य स्वरूप नग्न-दिगम्बर, मोर की पीछी और काठ का कमण्डलु है, केवल पदवी का भेद है।

छोड़ देता है उस समय एकाग्रतापूर्वक ध्यान करना ही निश्चय ध्यान है ॥

वस्तु का स्वरूप अरहन्त आदि ध्येय, शुद्ध मन, वचन और काय वाला आत्मा ध्याता तथा "णमो अरहंताणं" आदि का एकाग्रतापूर्वक चिन्तवन करना ध्यान † है।

परमध्यान का लक्षण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किमू अपि येन भवति स्थिरः ।
आत्मा आत्मनि रतः इदं एव परं ध्यानं भवति ॥५६॥

अन्वयार्थः—हे भव्यपुरुषो ! (किं वि) कुछ भी (मा चिट्ठह) चेष्टा मत करो, (मा जंपह) मत बोलो, (मा चिंतह) मत चिन्तवन करो (जेण) जिससे (अप्पा) आत्मा (अप्पम्मि) आत्मा में (रओ) लीन होकर (थिरो) स्थिर (होइ) होता है। इसलिये (इणं एव) यह ही (परं) उत्कृष्ट (झाणं) ध्यान है ॥५६॥

भावार्थः—मन, वचन और काय की क्रियाओं को रोक कर आत्मा का आत्मा में ही लीन होना परम ध्यान है।

---

† गुप्तेन्द्रियमनो ध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितम् ।
एकाग्रचिन्तनं ध्यानं, फलं संवरनिर्जरौ ॥

अर्थः—ध्याता, ध्येय और ध्यान का लक्षण ऊपर बता दिया है। ध्यान का फल संवर और निर्जरा है।

तप, व्रत और श्रुत में लीन होने के लिये प्रेरणा

तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तपःश्रुतव्रतवान् चेता ध्यानरथधुरन्धरः भवति यस्मात् ।
तस्मात् तत्त्रिकनिरताः तल्लब्ध्यै सदा भवत ॥५७॥

अन्वयार्थः—(जम्हा) क्योंकि (तवसुदवदवं) तप, श्रुत और व्रतों का धारक (चेदा) आत्मा (झाणरहधुरंधरो) ध्यान रूपी रथ की धुरा का धारक (हवे) होता है। (तम्हा) इसलिये (तल्लद्धीए) उस परमध्यान की प्राप्ति के लिये (सदा) निरन्तर (तत्तियणिरदा) तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में लीन (होह) होओ ॥५७॥

भावार्थ —तपश्चरण करने वाला, शास्त्रों का ज्ञान रखने वाला और अहिंसा आदि महाव्रतों का पालन करने वाला आत्मा ही उत्कृष्ट ध्यान प्राप्त कर सकता है। इसलिये तप आदि मे सदा लीन रहना चाहिये।

ग्रन्थकार का अन्तिम निवेदन

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियंजं ॥५८॥

द्रव्यसंग्रहं इदं मुनिनाथाः दोषसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः ।
शोधयन्तु तनुसूत्रधरेण नेमिचन्द्रमुनिना भणितं यत् ॥५८॥

अन्वयार्थ—(तणुसुत्तधरेण) अल्पज्ञानधारक (णेमिचंद-मुणिणा) नेमिचन्द्र मुनि ने (जं) जो (इणं) यह (दव्वसंगहं)

द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ (भणियं) कहा है। इसे (दोससंचयचुदा) दोषों के समूह से रहित (सुणिणाहा) मुनिनाथ (सोधयंतु) शुद्ध करें ॥५८॥

भावार्थ—रागादि तथा संशय आदि दोष रहित द्रव्यश्रुत + और भावश्रुत + के ज्ञाता मुनीश्वर, अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनि द्वारा रचित द्रव्यसंग्रह का संशोधन कर पठन-पाठन करें।

वर्तमान परमागमरूप द्रव्यश्रुत + तज्जन्य स्वसंवेदनरूप भावश्रुत।

प्रश्नावली

१ व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप बताओ।

२ वास्तव में मोक्ष का क्या कारण है? क्या आत्मा के सिवाय कोई मोक्ष-मार्ग है?

३ सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं? मनुष्य का सामान्यज्ञान सम्यग्ज्ञान कब होता है?

४ दर्शन और ज्ञान के उत्पन्न होने का क्या नियम है? केवली भगवान को दोनों साथ होते हैं या आगे पीछे?

५ व्यवहारनय की अपेक्षा से चारित्र का क्या लक्षण है? और व्यवहार-चारित्र के कितने भेद होते हैं?

६ ध्यान करने से क्या लाभ है? ध्यान में क्या जपना चाहिये और ध्यान का क्या फल है?

७ "ओम" सिद्ध करो। छह चार और दो अक्षर वाले मंत्र बताओ।

८ आचार्य उपाध्याय और साधुपरमेष्ठी में क्या समानता और असमानता है?

९ निश्चयध्यान का स्वरूप क्या है और साधु निश्चयध्यान कब प्राप्त करता है?

१० उत्कृष्टध्यान का स्वरूप समझाओ।

११ अरहन्त और सिद्ध परमेष्ठी में क्या अन्तर है?

—॥ इति तृतीयोऽधिकारः ॥—

ग्रन्थ का सारांश

प्रथम अधिकार

छह द्रव्यों का वर्णन

आचार्य्य ने पहिली गाथा में ही वर्णन किया है कि द्रव्य के दो भेद है— जीव और अजीव। जीव-चेतन और अजीव अचेतन। इनके सिवाय संसार में, किसी सिद्धान्त में और तत्व नहीं प्राप्त हो सकता। सब इन्हीं दोनों में गर्भित हो जाते है।

आत्मा चेतन है और कर्म अचेतन। इन दोनों का परस्पर अनादिकाल से सम्बन्ध है। जब तक इनका परस्पर संबंध रहता है तब तक जीव संसारी कहलता है और जब आत्मा कर्मरहित हो जाता है तब वही जीव मुक्त कहलाता है। इसलिये जब तत्वप्रेमियों को जीव और अजीव का भलीभाँति ज्ञान हो जाता है तब उनके लिये संसार में और कुछ जानने के योग्य विषय नहीं रहता है। कर्म्मों के कारण आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं हो पाता। इसलिये आत्मा रूपी सूर्य से कर्मरूपी बादलों का हटाना ही आत्मज्ञों का प्रथम धर्म्म है। इसे ही समझाने के लिये आचार्य ने जीव के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है.—

जीवत्व, उपयोगमय, अमूर्त्तिक, कर्त्ता, स्वदेहपरिमाण, भोक्ता, ससारस्थ, सिद्ध और विस्रसा ऊर्ध्वगमन ये जीव के

६ अधिकार है। इनसे जीव के वास्तविक (असली) स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। आचार्य इन्हें व्यवहारनय और निश्चयनय से प्रत्येक अधिकार को लिख रहे हैं। व्यवहार का अर्थ उपचार अथवा लोकव्यवहार और निश्चय का अर्थ वास्तविक स्वरूप है। जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का कहना व्यवहारनय है और मिट्टी के घड़े में घी, दूध, रस आदि रखे रहने पर उसे घी का घड़ा और दूध का घड़ा आदि कहना निश्चयनय है।

इसलिये जीव निश्चयनय से शुद्ध चेतना स्वरूप है, अनन्तदर्शनज्ञान स्वरूप है, अमूर्त्तिक है, अपने शुद्ध भावों का कर्त्ता है, चैतन्यगुणों का भोक्ता है, लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेशी है, शुद्ध है, सिद्ध है, नित्य है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित है तथा स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

व्यवहारनय से इन्द्रियादि दस प्राणों से जीता है, मति-ज्ञान और चक्षुदर्शन आदि यथायोग्य उपयोगों सहित है, कर्म्मों का कर्त्ता है सुख दुःखरूप कर्मफलों को भोगता है, नामकर्म के उदय से प्राप्त अपने छोटे बड़े शरीर के बराबर है, जीवसमास, मार्गणा और गुणस्थानों की अपेक्षा १४ १४ प्रकार का है, अशुद्ध है, संसारी है और विदिशाओं को छोड़कर गमन करने वाला है।

अजीवद्रव्य के ५ भेद हैं—पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म, आकाश और काल। जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जावे उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं। इसके अणु और स्कन्धों की अपेक्षा अनेक भेद होते हैं। जीव और पुद्गलों को चलने में सहायता करने वाला धर्म्मद्रव्य है और ठहरने में सहायता करने वाला अधर्म्मद्रव्य है। जीवादि द्रव्यों को स्थान देने वाला

आकाशद्रव्य है और जीवादि द्रव्यों का वर्तन और परिणमन कराने वाला कालद्रव्य है। इस प्रकार छहों द्रव्यों का संक्षिप्त लक्षण हुआ। कालद्रव्य को छोड़कर शेष पाँचों द्रव्यों को बहु-प्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय कहते हैं।

द्वितीय अधिकार।

नौ पदार्थों का वर्णन।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व होते हैं तथा पुण्य और पाप मिलाकर नौ पदार्थ कहे जाते हैं। इन्हीं का स्वरूप इस अधिकार में है:—

१. **जीव** —जिसमें चैतन्य अर्थात् ज्ञान और दर्शन पाया जावे।

२. **अजीव**—जिसमें ज्ञान और दर्शन नहीं पाया जावे।

३. **आस्रव** —बन्ध के कारण अर्थात् कषायादि के कारण ज्ञानावरण आदि कर्मों का आना।

४. **बन्ध** —रागद्वेषादि भावों के कारण आत्मा और कर्म्मों का परस्पर एकक्षेत्रावगाही होना।

५. **संवर** —उत्तमक्षमा और अहिंसादि के कारण ज्ञानावरणादि नवीन कर्म्मों का आस्रव न होना— प्रतिबन्ध करना।

६. **निर्जरा** —विशुद्ध भावों के द्वारा संचित कर्म्मों का एकदेश क्षय होना।

७. **मोक्ष**—समस्त कर्म्मों का पूर्ण रूप से क्षय हो जाना।

८. **पुण्य**—शुभ परिणामों से अधिकतर शुभ कर्मप्रकृतियों का आस्रव या बन्ध होना।

९. **पाप**—अशुभ परिणामों से अधिकतर अशुभ कर्म—प्रकृतियों का आस्रव या बन्ध होना।

जीवास्रव, जीवबन्ध, इत्यादि को भावास्रव, भावबन्ध और अजीवास्रव, अजीवबन्ध इत्यादि को द्रव्यास्रव, द्रव्यबन्ध आदि नामों से ग्रन्थ में वर्णन किया है। प्रत्येक पदार्थ के द्रव्य और भाव की अपेक्षा से दो भेद बताये हैं।

तृतीय अधिकार

मोक्षमार्ग का कथन।

व्यवहारनय से "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता ही मोक्ष का कारण है और निश्चयनय से सम्यग्दर्शनादि-रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही मोक्ष का प्रधान कारण है। जीवादि सात तत्वों का श्रद्धान करना व्यवहारसम्यग्दर्शन है। संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। आत्मा का श्रद्धान करना निश्चयसम्यग्दर्शन और आत्मा का ज्ञान करना निश्चयसम्यग्ज्ञान है। सम्यक्चारित्र के भी दो भेद हैं—व्यवहार और निश्चय। व्रत, समिति आदि का आचरण करना व्यवहारचारित्र है और यह निश्चयचारित्र का कारण है। आत्मा के स्वरूप में लीन होना निश्चयसम्यक्-चारित्र है।

चारित्र प्राप्त करने के लिये ध्यान करना अत्यन्त आवश्यक है। इष्ट पदार्थों से राग और अनिष्ट पदार्थों से द्वेष नहीं करना चाहिये। रागद्वेष और मोह से छूटने के लिये 'ओम्' अथवा "णमो अरहंताणं" आदि अथवा णमोकारमन्त्र इत्यादि का सदा स्मरण करना चाहिये। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन्हें परमेष्ठी कहते है। आचार्य, उपाध्याय और साधु इन्हें

गुरु कहते हैं। अरहन्त और सिद्ध परमेष्ठी, भगवान अथवा देव कहे जाते हैं।

मन, वचन और काय की प्रवृत्तियों का पूर्ण रूप से रोकना ही परमध्यान अथवा उत्कृष्ट ध्यान है और यही मोक्ष का साक्षात् कारण है।

अर्थसंग्रह

अ

अघातिकर्म्म—जो आत्मा के ज्ञानदर्शनादि गुणों को न घात कर अव्याबाध आदि गुणों को घाते। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म्म।

अधिकार—प्रकरण, परिच्छेद, अध्याय।

अचक्षुदर्शन—चक्षुइन्द्रिय के सिवाय अन्य इन्द्रियों तथा मन से पदार्थों की सत्तामात्र का जानने वाला।

अजीव—जिसमें चैतन्य (ज्ञान, दर्शन) न हो।

अणु—पुद्गल का सब से छोटा हिस्सा, जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके।

अधर्म्मद्रव्य—जो जीव और पुद्गलों को ठहरने में मदद करे।

अनिष्ट—मन को अप्रसन्न करने वाले पदार्थ।

अनुप्रेक्षा—तत्वों का बारबार विचार करना।

अनुभागबन्ध (अनुभव)—कम अधिक फल देने की योग्यता।

अभ्यन्तरक्रिया—आत्मा के योग और कषायरूप परिणाम होना।

अमनस्क—मनरहित जीव।

अमूर्त्तिक—जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श न पाया जावे।

अरहन्तपरमेष्ठी—ज्ञानावरण आदि चार घातिया कर्म्मों को नष्ट कर

अनन्तज्ञानादि गुणों को धारण करने वाले जिनेन्द्र भगवान्।

अलोकाकाश—जिसमें केवल आकाशद्रव्य हो।

अवधिदर्शन—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों की सत्तामात्र जानने वाला।

अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों को जानने वाला।

अविपाकभावनिर्जरा—कर्मों की स्थिति पूरी हुये बिना होने वाली निर्जरा।

असंख्यदेश—लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश वाला।

अस्तिकाय—जो द्रव्य "है और कायवान्" अर्थात् बहुप्रदेशी हैं। जैसे—जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म, आकाश।

आ

आकाश—जीव आदि सभी द्रव्यों को अवकाश देने वाला।

आचार्यपरमेष्ठी—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य और तप इन पांच आचारों में अपने को और दूसरों को लगाने वाला।

आतप—सूर्य तथा सूर्यकान्तमणि में रहने वाला गुणविशेष।

आयु—नरक आदि गतियों में रोकने वाला कर्म्म।

आस्रव—आत्मा में मन वचन और काय के द्वारा कर्म्म आते हैं इसलिये योग को आस्रव कहते हैं।

इ

इन्द्रियः—आत्मा के अस्तित्व को बतानेवाला अथवा परोक्षज्ञान उत्पन्न करने का साधन।

इष्टः—मन को प्रसन्न करने वाला पदार्थ।

उ

उत्पादः—नवीन पर्याय का उत्पन्न होना।

उद्योतः—चन्द्रमा, चन्द्रकान्तमणि अथवा अथवा जुगनू आदि का प्रकाश।

उपयोगः—ज्ञान और दर्शन।

उपाध्यायपरमेष्ठीः—जो रत्नत्रय सहित हो और सदा धर्म्मोपदेश देने वाला हो।

ओ

ओम्—अरहन्त आदि पांच परमेष्ठियों के आदि अक्षर से बना हुआ शब्द अर्थात् पञ्चपरमेष्ठी का ज्ञान करने वाला।

क

कर्त्ता—(व्यवहारनय) ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म्मों का बन्ध करने वाला।

,, (निश्चयनय) रागादि भावों का बन्ध करने वाला।

,, (शुद्धनिश्चयनय) शुद्ध चैतन्यभावों का बन्ध करने वाला।

कषाय—क्रोधादि रूप भाव होना।

काय—बहुत प्रदेश वाला।

कालद्रव्य—द्रव्यों के परिणमन में सहायता करने वाला।

केवलदर्शन—लोक और अलोक के समस्त पदार्थों की सत्ता को एक साथ जानने वाला।

केवलज्ञान—तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थों को एक साथ स्पष्ट जानने वाला।

केवलिनाथ—केवलज्ञान के धारी तथा तीन लोक के स्वामी अरहन्त भगवान्।

ग

गुणस्थान—जिनके द्वारा उदयादि भावों सहित जीव पहिचाने जावें

गुप्ति—मन, वचन और काय की क्रियाओं का रोकना।

घ

घातिकर्म्म—जो आत्मा के ज्ञानदर्शनादि अनुजीवी गुणों का घात करे।

च

चक्षुदर्शन—चक्षुरिन्द्रिय से मूर्त्तिक पदार्थों की सत्तामात्र को जानने वाला।

चैतन्य—ज्ञान तथा दर्शन उपयोग।

छ

छद्मस्थ—क्षायोपशमिक (मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यय) ज्ञान के धारक सरागी जीव।

छाया—धूप में मनुष्य आदि की तथा दर्पण में मुख आदि का प्रतिबिम्ब पड़ना।

ज

जिन—कर्म शत्रुओं अथवा मिथ्यात्व और रागादि को जीतने वाले।

जिन—ज्ञानावरण आदि चार घातिया कर्म्मों को नष्ट करने वाले अरहन्त भगवान्।

जिनवर—अरहन्तो के प्रधान—तीर्थंकर।

जिनवरवृषभ—तीर्थंकर पदधारी वृषभ भगवान्।

अथवा

जिन—असंयतसम्यग्दृष्टी आदि सातवें गुणस्थान तक के जीव।

जिनवर—गणधरदेव।

जिनवरवृषभ—गणधरो में प्रधान तीर्थंकर।

जीव—जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान और दर्शन पाये जावें।

जीवसमास—जिसमें अनेक प्रकार के जीवों का संक्षेपरूप से ग्रहण किया जावे।

त

तप—इच्छाओं का रोकना।

तम—दृष्टि को रोकने वाला अन्धकार।

त्रस—अपनी इच्छा से चलने फिरने की शक्ति रखने वाले जीव।

द

दर्शन—पदार्थों को आकार रहित सामान्यरूप से जानना।

दिशा—पूर्व आदि दिशायें।

दुरभिनिवेश—संशय, विपर्य्यय और अनध्यवसाय।

द्रव्य—जो गुण और पर्यायवाला हो अथवा सत्स्वरूप हो।

द्रव्यबंध—कर्म और आत्मा के प्रदेशों का एक क्षेत्र में सम्बन्ध विशेष होना।

द्रव्यमोक्ष—सब कर्मों का आत्मा से पृथक हो जाना।

द्रव्यसंवर—द्रव्यास्रव का रुकना।

द्रव्यसंग्रह—जिसमें जीव और अजीव (पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म, आकाश और काल) द्रव्यों के समुदाय का वर्णन हो।

द्रव्यास्रव—ज्ञानावरणादि कर्म्मों के योग्य पुद्गलों का आना।

ध

धर्म्म—जो संसार के दुःखों से बचाकर उत्तम सुख में पहुँचावे।

धर्म्मद्रव्य—जो जीव और पुद्गलों को चलने में मदद करे।

ध्यान—सब प्रकार के विकल्पों का त्याग कर अपने चित्त को एक ही लक्ष्य में स्थिर रखना।

ध्रौव्य—पहिली और आगे की पर्यायों में नित्यता का कारण रूप।

न

नय—प्रमाण का एक देश।

निर्जरा—आत्मा से कर्म्मों का एक देश झड़ जाना ।

निश्चयचारित्र—बाह्य और अभ्यन्तर क्रियाओं के रुकने से हुई आत्मा की निर्मलता ।

निश्चयनय—पदार्थ के असली स्वरूप को बताने वाला ।

निश्चयमोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन आदि स्वरूप आत्मा ।

प

परमध्यान—मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को रोककर आत्मा का आत्मा में लीन हो जाना ।

परमेष्ठी—परम (उत्कृष्ट) पद में रहने वाले अरहन्त आदि ।

परीषह—कर्म्मों का नाश करने के लिये समताभावों से भूख प्यास आदि का कष्ट उठाना ।

परोक्षज्ञान—इन्द्रियों के द्वारा होने वाले ज्ञान, मति, श्रुत ।

प्रत्यक्षज्ञान—इन्द्रियों की सहायता के बिना, आत्मा की सहायता से होने वाले ज्ञान अवधि, मनःपर्यय और केवल ।

परमाणु—जिसका विभाग न हो सके ऐसा अणु ।

पर्याप्ति—पुद्गलपरमाणुओं को शरीर इन्द्रियादि रूप परिणमन कराने की शक्ति की पूर्णता ।

पाप—अशुभ भावों से अधिकतर बँधने वाले कर्म्म, असातावेदनीय आदि ।

पुण्य—शुभ भावों से अधिकतर बँधने वाले कर्म्म, सातावेदनीय आदि ।

पुद्गलद्रव्य—जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पाये जावें ।

प्रकृति—आत्मा में ज्ञानादिगुणों को घात करने का स्वभाव प्रकट होना ।

प्रदेश बन्ध—आत्मा के साथ बँधने वाले कर्म्मों की संख्या का विभाग

प्रदेश—जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके ऐसा पुद्गलपरमाणु जितने आकाश में रह सके उतने आकाश को प्रदेश कहते हैं।

प्रमाद—स्त्री आदि की कथाओं का सुनना और क्रोधादि रूप परिणाम होना अथवा चारित्रधारण करने में शिथिलता।

ब

बल—मन, वचन और काय की शक्ति।

बन्ध—आत्मा और कर्म के प्रदेशों का मिल जाना।

बाह्यक्रिया—हिंसादि पापों में प्रवृत्ति करना।

भ

भावास्रव—आत्मा के जिन परिणामों से कर्म आते हैं।

भावनिर्जरा—आत्मा के जिन परिणामों से कर्मों की निर्जरा होती है।

भावबन्ध—आत्मा के जिन परिणामों से कर्मों का बन्ध होता है।

भावमोक्ष—आत्मा के जिन परिणामों से कर्मों का क्षय हो।

भावसंवर—आत्मा के जिन परिणामों से आस्रव न हो।

भेद—प्रकार अथवा गेहूँ का दलिया आटा आदि।

भोक्ता—(निश्चयनय) आत्मा के शुद्धदर्शन और शुद्धज्ञानमय उपयोगों का भोगने वाला।

भोक्ता—(व्यवहारनय) ज्ञानावरणादि कर्म्मों के सुख दुःखों का भोगने वाला।

म

मतिज्ञान—इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला ज्ञान।

मनःपर्ययज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये दूसरे के मन के रूपी पदार्थों का जानने वाला।

मिथ्यात्व—तत्त्वों का विपरीत श्रद्धान करना।

मार्गणा—जिनसे गति आदि द्वारा जीव ढूँढ़े जावें ।

मन्त्र—परमेष्ठी को जपने और ध्यान करने का वचन रूप साधन ।

य

योग—मन, वचन और काय की प्रवृत्ति ।

र

रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ।

ल

लोकाकाश—जिसमें जीव आदि द्रव्य पाये जावें ।

व

विकलत्रय—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव ।

विकलप्रत्यक्ष—अवधि और मनः पर्यय ज्ञान ।

विदिशा—ईशान, नैऋत्य, वायव्य, आग्नेय,

विभ्रम (विपर्यय, विपरीत)—वस्तु के स्वरूप को उलटा समझना ।

विमोह (अनध्यवसाय)—वस्तु के स्वरूप का निश्चय न होना ।

व्यय—पहिली पर्याय का नाश होना ।

व्यवहारकाल—घड़ी, घंटा, मिनिट आदि रूप व्यवहार का कारण ।

व्यवहारचारित्र—हिंसादि पापों का त्याग करना ।

व्यवहारनय—दूसरे पदार्थ के संयोग से मिली दशा को बतानेवाला ।

व्यवहारमोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ।

श

शब्द—श्रोत्रइन्द्रिय का विषय ।

श्वासोच्छ्वास—प्राणियों को जीवित रखने वाली प्राणवायु ।

श्रुतज्ञान—मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थ के विशेष गुणों को जाननेवाला ।

स

समनस्क—मन सहित जीव ।

समिति—प्रमाद रहित होकर धर्मानुकूल आचरण करना ।

समुद्घात—मूल शरीरको न छोड़कर आत्मा के प्रदेशो का बाहर निकलना ।

सम्यग्ज्ञान—संशयादि रहित स्वपर का ज्ञान ।

सर्वज्ञ—तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थों को दर्पण के समान जानने वाला ।

साधुपरमेष्ठी—जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का साधन करता हो ।

सिद्धपरमेष्ठी—ज्ञानावरण आदि आठो कर्मों को नष्ट कर सम्यक्त्व आदि धारण करने वाले परमात्मा ।

सूक्ष्म—अनार से सेव वगैरह का अपेक्षा से छोटा होना ।

संस्थान—द्विकोण, त्रिकोण आदि आकार ।

संशय—निश्चयरहित अनेक विकल्पों को ग्रहण करने वाला ज्ञान ।

संसारी—नरक आदि गतियों में भ्रमण करने वाला जीव ।

स्थावर—पृथिवी आदि एकेन्द्रिय जीव ।

स्वदेहपरिमाण—समुद्घात अवस्था को छोड़कर, नाम कर्म के उदय से प्राप्त अपने छोटे या बड़े शरीर के बराबर रहना ।

स्थूल—सेव से अनार वगैरह का अपेक्षा से बड़ा होना ।

भेद संग्रह

अ

अजीव—पुद्गल धर्म्म, अधर्म, आकाश, काल ।

अधिकार—९, जीवत्व उपयोगमय, अमूर्त्ति कर्त्ता, स्वदेहपरिमाण, भोक्ता संसारस्थ, सिद्ध, विस्रसाऊर्ध्वगमन ।

अनुप्रेक्षा—१२, अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ धर्म्म ।

अनन्तचतुष्टय—४, अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख वीर्य ।

अष्टगुण—८, सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व ।

अस्तिकाय ५, जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म, आकाश ।

आ

आस्रव—२, द्रव्य, भाव ।

,, —३२, मिथ्यात्व ५, अविरति ५, प्रमाद १५, योग ३, कषाय ४.

आचार—५ दर्शन, ज्ञान, वीर्य, व्रत, तप ।

आकाश—२, लोक, अलोक ।

इ

इन्द्र—१००, भवनवासी ४०, व्यन्तर ३२, कल्पवासी २४, ज्योतिषी २ (सूर्य-चन्द्रमा) चक्रवर्ती १ सिंह १.

इन्द्रियाँ—५, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण (श्रोत्र).

उ

उपयोग—२ ज्ञान, दर्शन,

,, —१२, ज्ञान ८, दर्शन ४

ए

एकेन्द्रिय—२, सूक्ष्म बादर, (स्थूल)

, —५, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति ।

क

कर्म—२, पुण्य, पाप ।

,,—२, घातिया अघातिया ।

कर्म—८, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र अन्तराय ।

काल—२, निश्चय, व्यवहार ।

क्रिया—२, अन्तरङ्ग बाह्य ।

गन्ध—२, सुगन्ध दुर्गन्ध ।

गुणस्थान—१४, मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरतसम्यक्त्व, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त, अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, उपशान्तमोह (उपशान्तकषाय) क्षीणमोह (क्षीणकषाय), सयोगकेवली, अयोगकेवली ।

गुप्ति—३, मन वचन, काय ।

च

चारित्र—२, बाह्य, अन्तरङ्ग ।

, —५, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात ।

छ

छद्मस्थ—४, मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय ज्ञान के धारक जीव ।

ज

जीव—२ संसारी, मुक्त ।

जीवसमास—१४ चार्ट देखो ।

तप

तप—२, बाह्य ६, अभ्यन्तर ६

त्रसजीव—४, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय ।

द

द्रव्य—२, जीव, अजीव ।

,, —६, जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म आकाश, काल ।

दिशा—१०, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ईशान, वायव्य, आग्नेय, नैऋत्य, ऊर्ध्व (ऊपर), अध· (नीचे)

ध

धर्म्म—१०, उत्तम, क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चिन्य, ब्रह्मचर्य्य ।

न

निर्जरा—२, द्रव्य, भाव,

नोकर्म—३, औदारिक, वैक्रियक, आहारक ।

प

पञ्चेन्द्रिय—२ सैनी, असैनी,

पर्याप्ति—६, आहार, शरीर, इन्द्रिय, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन ।

परीषह—२२, भूख, प्यास, ठंड, गरमी, दशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, शय्या, आसन, बध, आक्रोश, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ।

पुद्गलकर्म्म—८, ज्ञानावरण आदि ।

पुद्गलगुण—२०-स्पर्श ८, रस ५, रूप ५, गन्ध २.

पापकर्म—४, असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र, और ४ घातियाकर्म ज्ञानावरण आदि ।

पुण्यकर्म—४, सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, उच्चगोत्र ।

प्राण—४, इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास ।

,, —१०, इन्द्रिय ५, बल ३, आयु, श्वासोच्छ्वास ।

ब

बन्ध—२, द्रव्य, भाव।

,, —४, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश।

भ

भावास्रव—५ मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग, कषाय,

,, —३२, मिथ्यात्व ५, अविरति ५, प्रमाद १५, योग ३, कषाय ४

भावनिर्जरा—२, सविपाक, अविपाक।

म

महाव्रत—५, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य्य, परिग्रहपरिमाण,

मार्गणा—१४, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञा, आहार।

मिथ्यात्व—५, विपरीत, एकान्त, विनय, संशय, अज्ञान।

मुनिचरित्र—१३, व्रत ५, समिति ५, गुप्ति ३.

मोक्ष—२, द्रव्य, भाव।

मोक्षमार्ग—२, व्यवहार, निश्चय।

य

योग—३ मन, वचन, काय।

र

रत्नत्रय—३, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।

व

विदिशा—४, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, आग्नेय,।

व्रत—५, अहिंसा आदि।

विकलत्रय—३, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव

स

संवर—२, द्रव्य, भाव,

,, —९, व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र ।

,, —६२. ५, ५, ३, १०, १२, २२. ५,

समुद्घात—७, वेदक, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहार, केवल ।

समिति—५, ईर्य्या भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, व्युत्सर्ग.

ज्ञ

ज्ञानोपयोग—२, ज्ञान, अज्ञान ।

,, —८, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल और कुमति, कुश्रुत, कुअवधि (विभङ्ग)

प्रश्नपत्र-संग्रह

समय ३ घंटे १९३४ पूर्णांक १००

(१) अचक्षुदर्शन, मतिज्ञान, मोक्ष, अरहंत, पुद्गल, प्रदेश और चारित्र से क्या समझते हो ।

(२) इस ग्रन्थ का द्रव्यसंग्रह नाम क्यों रक्खा गया है ? जीव के नौ अधिकार कौनसे है नाम गिनाओ ? अन्धे और बहरे मनुष्य के कितने प्राण होते है ? १४

(३) मूर्तिक और अमूर्तिक में क्या अन्तर है ? तुम मूर्तिक हो या अमूर्तिक ? अस्तिकाय किसे कहते हैं ? कालद्रव्य अस्तिकाय है या नहीं ? तत्वों और द्रव्यों के नाम गिनाओ ? क्या दोनों में कोई फ़र्क है ? १६

(४) निश्चयनय और व्यवहारनय में क्या अन्तर है ? द्रव्यबंध, भावनिर्जरा और आस्रव का स्वरूप समझाओ, ध्यान किसे कहते है कितनी तरह का होता है, क्या किया जाता है और कैसे किया जाता है ? १६

(५) एक अक्षर का मंत्र कौनसा है और उसमें पंचपरमेष्ठी का नाम कैसे आ जाता है। निश्चयध्यान का स्वरूप लिखो ज्ञानोपयोग के कितने भेद है। हमारे देश में इस समय कितने परमेष्ठी मौजूद हैं? १६

(६) सनत्कुमार चक्रवर्ती या अञ्जना सुन्दरी की जीवनी संक्षेप में लिखो और बतलाओ कि उनके जीव से तुम्हें क्या शिक्षा मिली। १०

(७) ब्रह्मचर्य या स्त्रीशिक्षा पर एक सुन्दर निबन्ध लिखो। १२

(८) जिनेन्द्रभक्ति या जातिसुधार पर कोई भजन लिखो। ४

शुद्ध और सुन्दर लेख ५

समय ३ घंटे १९३५ पूर्णांक १००

(१) इस पुस्तक का नाम द्रव्यसंग्रह क्यों रखा गया? १२
'द्रव्य' और 'तत्व' से तुम क्या समझते हो?
इसके रचयिता (Author) का क्या नाम है? क्या उन्होंने कहीं पर अपना नाम दिया है?

(२) जीव किसे कहते है और उसके कितने प्राण १२ होते है? 'दर्शन' से तुम क्या समझते हो? तुम्हारे कितने दर्शनोपयोग है?

(३) जीव मूर्तिक है या अमूर्तिक? और वह कितना १४ बड़ा है? संसारी जीव कितनी तरह के होते है और उनके कितनी पर्याप्तियां है?

(४) तुम अपने सामने किन २ द्रव्यों को देखते हो? १४ एक जीव को अपना काम चलाने के लिये कितने द्रव्यों की ज़रूरत होती है?

द्रव्य और अस्तिकाय में क्या अन्तर है ? तुम द्रव्य हो या अस्तिकाय ?

(५) (अ) उदाहरण देकर भावबन्ध और द्रव्यबन्ध का स्वरूप समझाओ ? बन्ध के भेद और कारण लिखो । १२

(ब) ऐसे एक मंत्र का नाम लिखो जिसमें सब परमेष्ठियों का नाम आ सके । आचार्यपरमेष्ठी का क्या स्वरूप है और उनका ध्यान क्यों करना चाहिये ।

(६) (अ) ध्यान करने के लिये किन २ बातों की जरूरत है । आकाश के कितने भेद हैं और क्यों है ? १२

(ब) कालद्रव्य कहाँ नहीं है ?

(७) चामुण्डराय, या भगवान आदिनाथ की जीवनी लिखो और बतलाओ कि, उनके जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है ? ८

(८) नीचे लिखे विषयों में से किसी एक पर छोटा सा लेख लिखो– १०

१-अहिंसा, २-सादा जीवन, ३-व्रतों की उपयोगिता ।
शुद्ध और सुन्दर लेख ६

समय ३ घन्टे १९३६ पूर्णांक १००

(१) श्रुतज्ञान, प्रदेश, अरहंत, स्कंध, कर्मबंध, और अविरति का स्वरूप लिखो । १२

(२) ध्यान किसे कहते हैं । ध्यान किस का करना चाहिये

और क्यों। ध्यान कब हो सकता है। और मन कैसे स्थिर किया जा सकता है ? १०

(३) जीव किस चीज़ का कर्ता और भोक्ता है। जीव लोकप्रयाण कब हो सकता है। अर्हंत मुनि हैं या नहीं, क्यों ? १०

(४) (a) अस्तिकाय से आप क्या समझते हैं। कौन २ द्रव्य अस्तिकाय है और क्यों। पुद्गल का एक अणु अस्तिकाय कैसे है। १२

(b) उपयोग हर एक जीव में पाया जाता है सिद्ध करो। ६

(५) भावसंवर और द्रव्यसंवर के भेद लिखो। १०

(६) निश्चयमोक्षमार्ग किसे कहते है और वह कब होता है। सम्यग्दर्शन से क्या लाभ है। पाप और पुण्य से क्या समझते हो। १५

(७) चामुंडराय या अकलंकदेव की जीवनी और उससे मिलने वाली शिक्षाएं लिखो। १०

(८) " सादा जीवन " या " धैर्य " पर एक लेख अपनी कापी के २ पेज पर लिखो। १०

शुद्धता और सफाई ५

समय ३ घन्टे १६३७ पूर्णांक १००

(१) द्रव्य से आप क्या समझते हैं उदाहरण पूर्वक समझाइये। आप कौन द्रव्य हैं ? अस्तिकाय द्रव्य और अजीव द्रव्यों के नाम लिखिये। १२

(२) मक्खी, जोंक, बालक, रेल, रबर की गाय, बेल (लता)

मुक्तजीव, इनके कौनसे और कितने प्राण, तथा पर्याप्तियां होती है ?

(३) मूर्तिक द्रव्य से आप क्या समझते है ? आप मूर्तिक है या नहीं कारण पूर्वक लिखिये। आंखों से कौन २ द्रव्य देख सकते हैं। बादल, अन्धकार, वायु, सेकिन्ड, अणु, पुण्य, पाप लोकाकाश, कौन से द्रव्यों मे शामिल है और क्यों ? १५

(४) तत्त्व शब्द से आप क्या समझते है उसके भेद लिखकर सिर्फ यह बताइये कि बंध किस चीज का किससे, कैसे, कौन २ कार्य करने से होता है। १५

(५) मोक्ष कहां है, क्या है। कैसे प्राप्त हो सकता है ? मोक्ष में उत्तम २ भोजन और विलास की सामग्री मिलती है। यदि नहीं तो मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न व्यर्थ है समझा कर लिखो। १०

(६) पंचपरमेष्ठी वाचक मन्त्र का नाम लिख कर यह सिद्ध कीजिये कि उस मन्त्र से पंचपरमेष्ठी का बोध कैसे होता है। आज कल कितने परमेष्ठी हमारे देखने मे आते है। परमेष्ठियों में देव कितने और गुरु कितने है ? जैन मन्दिरों की मूर्तियां किन परमेष्ठी की है। १०

(७) आप द्रव्यसंग्रह का प्रश्नपत्र सामने देख रहे है यह आप का ज्ञान प्रत्यक्ष है या परोक्ष, सिद्ध कीजिये। प्रत्यक्ष, परोक्ष से आप क्या समझते है ? १२

(८) स्वामी उमास्वामी की जीवनी

या

सादा जीवन पर एक निबन्ध २५–३० लाइन का लिखो। १२

शुद्ध और सुन्दर लिखने के लिये

समय ३ घण्टे १९३८ पूर्णांक १००

(१) मंगल से आप क्या समझते है ? ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने का क्या कारण है ? ८

(२) (क) जीव का लक्षण लिखकर यह बतलाइये कि ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग में क्या भेद है ? ७

(ख) दर्शनोपयोग के भेद और उनकी परिभाषा लिखिये। ५

(३) शुद्ध और अशुद्ध निश्चयनय से आप क्या समझते है ? जीव अशुद्धनय से किसका कर्ता है ? १०

अथवा (Or)

जीव के ऊर्ध्वगमनाधिकार का वर्णन कर यह बतलाइये कि जीव ऊर्ध्वगमन कहां तक करता है ? क्या वह ऊर्ध्वगमन करते हुए कहीं पर ठहरता भी है या नहीं ? यदि ठहरता है तो कहां और क्यों ? १०

(४) अजीवद्रव्य के भेद लिख कर अस्तिकाय द्रव्यों के नाम मात्र लिखो। पुद्गल-परमाणु अस्तिकाय है या नहीं ? कारण सहित स्पष्ट लिखिये। ८

(५) सात तत्वों के नाम मात्र लिख कर उनमें से मोक्ष के कारणभूत तत्वों को सलक्षण बतलाइये। ६

(६) निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग में अन्तर दिखलाकर यह बतलाइये कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में से पहले कौन होता है। ६

(७) ध्यान का लक्षण लिख कर उसकी आवश्यक सामग्री बतलाइये। ७

(८) निम्नलिखित में से किन्हीं १० की परिभाषा

लिखिये:—

मूर्तिक, समुद्घात, गुणस्थान, प्रकृतिबंध, पुद्गल, अस्तिकाय, प्रमाद, गुप्ति, समिति, धर्म, सम्यग्दर्शन, अभ्यन्तरक्रिया, छद्मस्थ, आचार्य, तप ।

(६) इस ग्रन्थ के कर्ता का नाम व उनके जीवनचरित्र को लिखकर उनसे बनाये हुये शास्त्रों के नाम लिखिये । १५

(१०) गृहस्थजीवन कैसे सुखमय बन सकता है ? इस पर एक सुन्दर लेख लिखो । १२

शुद्ध लेख ६

अकारादि क्रम से द्रव्यसंग्रह की गाथासूची

❀ सरलजैनग्रन्थमाला ❀

के उद्देश्य।

१ इस माला में बालक, बालिकाओं को सरल से सरल रूप में जैनधर्म के स्वरूप को समझाने वाली पुस्तकें प्रकाशित होंगी।

२ इस माला की पुस्तकों के सम्पादक और लेखक समाज के सुप्रसिद्ध लेखक, कवि और योग्य विद्वान होंगे।

३ धार्मिक भावों को हृदयङ्गम बनाने के लिये शास्त्रीय कथानक रोचक रूप में सचित्र प्रकाशित किये जावेंगे।

४ इस माला का मुख्य उद्देश्य धार्मिक पुस्तकों को कम से कम मूल्य में शुद्ध, सुन्दर और सचित्र प्रकाशित करना है।

५ उक्त उद्देश्यो को सफल बनाने के लिये सुयोग्य विद्वान लेखकों की कृतियों पर समुचित पुरस्कार देने की भी योजना है। विद्वान लेखक पत्रव्यवहार करें।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि आजतक इतने कम मूल्य में इतनी सुन्दर और सरल जैन पुस्तकें आपके सामने न आई होंगीं—

भुवनेन्द्र "विश्व"

प्रकाशक

सरलजैनग्रन्थमाला,

जवाहरगज, जबलपुर (सी. पी.)